साधना में स्थितियाँ

ब्रह्मविद्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

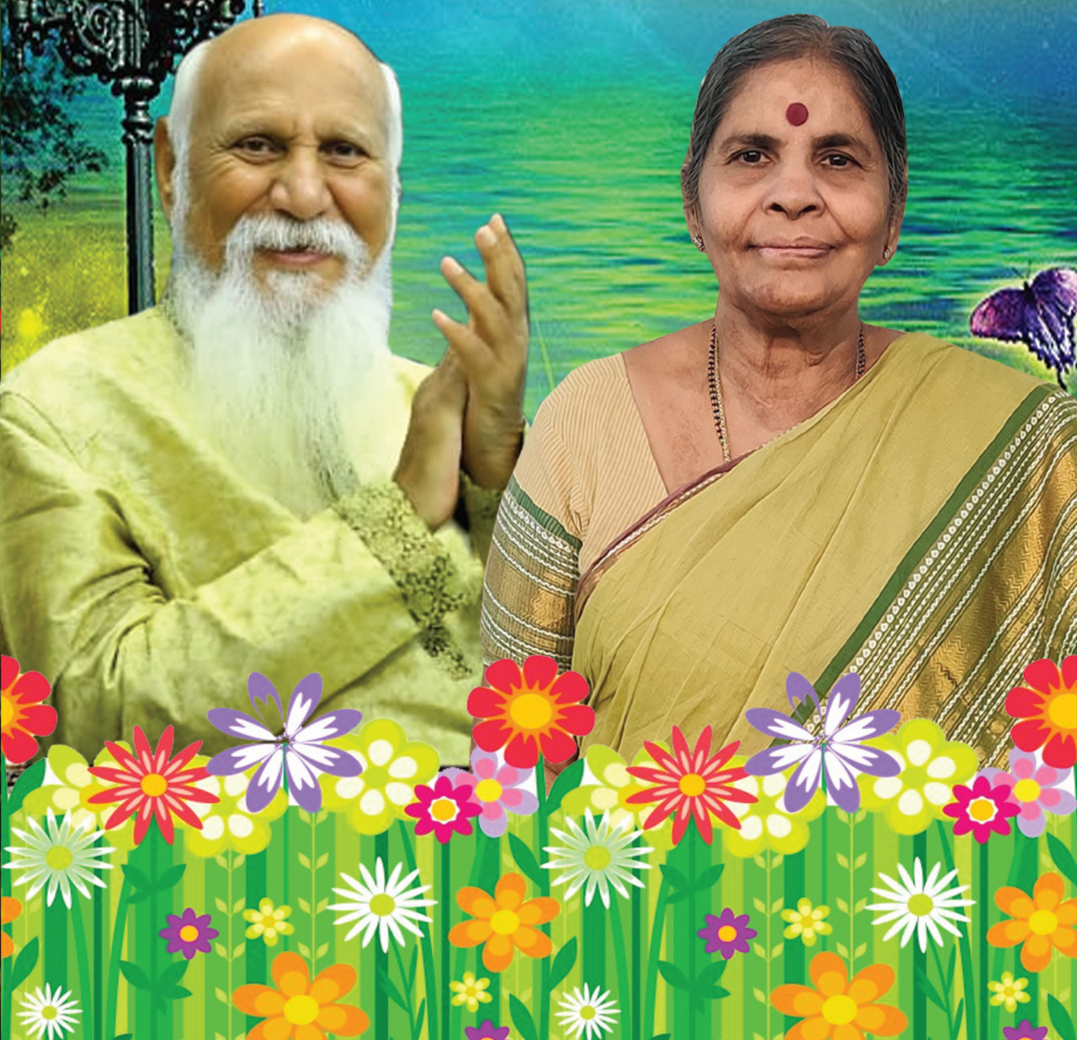

साधना में स्थितियाँ

लेखकः ब्रह्मविद्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

हिन्दी अनुवादः श्रीमति तम्मन श्रीलता

For Books Please Contact :

TATAVARTHY VEERA RAGHAVARAO

Tatavarthivari Street, BHIMAVARAM-534201.

W.G.Dist., A.P. Ph: 94403 09812

Rs.80/-

विषय सूची

1) साधना में स्थितियाँ 3

2) जो श्रद्धा साधक को होनी चाहिए 8

3) आत्मज्ञानि बनना है तो ? 17

4) सत्य, धर्म कब नाश होंगे ? 22

5) परा प्रकृति – अपरा प्रकृति 29

6) बुद्धि के लक्षण 38

7) ''मानवों में कितने तरह होते हैं'' 57

8) परोक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान में बदलना हो तो ? 59

ब्रह्मविध्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी के हिन्दी किताब

1) एक और जन्म Rs.160/-

2) साधना में स्थितियाँ.................................. Rs.80/-

3) ज्ञान माला... Rs.70/-

4) श्री दत्तात्रेय जी का 24 गुरूओं ।................. Rs.70/-

5) अगर मानव को योगी बनना है तो ?........... Rs.60/-

6) महात्माओं का संदेशों.............................. Rs.50/-

7) मानव के कर्तव्यों Rs.50/-

8) शाकाहार ही मानव का आहार है ! Rs.50/-

साधना में स्थितियाँ

अनजान विषयों को जानने के लिए ही पृथ्वी पर आते हैं। यदि जानने की तीव्र इच्छा हो तो बताने वाले भी अवश्य मिलते हैं। ज्ञान अर्थात हर विषय को जानकर, समझकर, आचरण में लाना होगा। श्रीकृष्ण जैसे वाले भी पृथ्वी पर आकर मृत्यु प्राप्त करते हैं तो सामान्य लोग स्थायी से रहेंगे क्या? पहले वालों को देखने पर भी ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे वे हमेशा के लिए पृथ्वी पर ही रहेंगे।

ऐसा सोचते हुए हमेशा मृत्यु के बारे में या मरण के बाद जो जीवन है उसके बारे में सोचते ही नहीं। लेकिन जो पृथ्वी पर रहते हुए ही योगमय जीवन जीते हैं! सद्गुरुओं से बताई गई साधना करते हैं! ज्ञान प्राप्त करने के लिए जो तीव्र इच्छा होती है! ऐसे लोगों के मृत्यु के बाद का जीवन बहुत महान होता है।

इस कलियुग में सांसारिक भोगों के लिए, सुखों के लिए, लाभों के लिए ही योग का अभ्यास कर रहे हैं। लेकिन यह जान नहीं पा रहे हैं कि योग आत्म-उद्धार के लिए है, आत्म उन्नत स्थिति को प्राप्त करने के लिए है।

गुरु सभी को आत्मज्ञानी बनाने की आशा से पृथ्वी पर आकर, ध्यान के द्वारा सभी को महान बनाना चाहते हैं। जो कोई भी आत्मज्ञान पाने की कामना करने वाले ही गुरु के पसंदीदा शिष्य के जैसे बनता है। लेकिन शिष्य प्रगति में बढ़ रहा है, यह कैसे पता चलेगा?

उत्तर गीता में श्री कृष्ण भगवान ने कहा है कि साधना में चार स्थितियां होती है। वे क्या है कि

1)समाधि, 2)सविकल्प समाधि, 3)निर्विकल्प समाधि, 4)सहज निर्विकल्प समाधि।

1) समाधि स्थिति :

साधना में आने के बाद योग का अभ्यास करके, निष्काम कर्मों को करते हुए भगवान के अस्तित्व की खोज शुरू करते हैं। उस भगवान को मूर्तियों में नहीं बल्कि सभी जीवों में मौजूद होने की बात गुरु के द्वारा, अनेक ग्रंथों के द्वारा जान पाते हैं।

इस स्थिति में जानते हैं कि भगवान का दर्शन करना हो तो योगमार्ग ही सही मार्ग है। वैसे ही एक–एक प्रश्न का उत्तर भी जानते हैं । इस प्रकार ''जिस स्थिति में उत्तर मिलते हैं, उसे ही समाधि स्थिति'' कहते हैं।

पत्रीजी ने कहा कि मांसाहार को छोड़ना चाहिए, क्योंकि सभी जीवों में अंतर्यामी के जैसे आत्मा अर्थात भगवान है। जो तब तक यह सोचते थे कि सभी जीव केवल खाने के लिए ही हैं, उनके लिए ''मांसाहार क्यों नहीं खाना चाहिए?'' इस प्रश्न का उत्तर ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' यह वेद वाक्य मिला है।

ये पता चलता है कि भगवान कहीं और नहीं हैं सभी जीवों में अंतर्यामी के जैसे है, सारे सृष्टि में है, पंचभूतों में भी है। इस प्रकार ''भगवान कहाँ रहते हैं ?'' इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। इतना ही नहीं, यह भी जानते हैं कि ''यदि हम किसी जीव को हिंसा करेंगे, तो भगवान को हिंसा करने के समान है।''

ये पता चलता है कि भगवान कहीं और नहीं हैं सभी जीवों में अंतर्यामी के जैसे है, सारे सृष्टि में है, पंचभूतों में भी है। इस प्रकार ''भगवान कहाँ रहते हैं ?'' इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। इतना ही नहीं, यह भी जानते हैं कि ''यदि हम किसी जीव को हिंसा करेंगे, तो भगवान को हिंसा करने के समान है।''

2) सविकल्प समाधि स्थिति :

वैसे ही गुरु के द्वारा, सत ग्रंथों के द्वारा बहुत विषयों को जान सकते हैं। ये सब जानने के बाद चित्त बहुत शांत हो जाता है। यह जान सकते हैं कि

सब कुछ भगवान ही हैं, मैं नामक कुछ नहीं है, बगल वाला मुझसे अलग नहीं है। लेकिन चाहे जितना भी जान लें कुछ संदेह वैसे ही रह जाते हैं। ऐसे स्थिति को ही ''सविकल्प समाधि की स्थिति'' कहा जाता है।

3) निर्विकल्प समाधि स्थिति :

इस स्थिति में बैठते ही शून्य में चले जाते हैं। वहाँ कोई भी संदेह नहीं होता। चित्त पूरी तरह से शांत हो जाता है। सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं। इसी स्थिति को निर्विकल्प समाधि की स्थिति कहा जाता है।

इस स्थिति में कई दृश्य दिखाई देते हैं, अनेक मास्टर्स दिखाई देते हैं, परम गुरुओं से अनुसंधान होते हैं। पूर्ण आत्मा से भी अनुसंधान होते हैं। तब समझ में आता है कि पृथ्वी पर मैं क्यों आया हूँ? मुझे क्या काम करना चाहिए? तब समझ में आता है कि मुझे सबको ज्ञानवान बनाकर, खुद पूर्णात्मा के जैसे बढ़ना है।

मन महा परिशून्य होता जाता है। जब परम गुरुओं से या पूर्णात्मा से अनुसंधान होता है, तब सांसारिक विषयों में पूरी तरह से आसक्ति कम हो जाती है। आत्मा पर ही आसक्ति होती है।

इस स्थिति में सभी को सत्य मार्ग का बोध करना चाहिए, सभी को सत्य में जीने लायक बना ने का ही प्रयत्न होता है। सामने वाले जब बात करते हैं, तब यह समझ में आता है कि उनका ज्ञान किस स्तर पर है। पूरी तरह से संशय रहित स्थिति को ही निर्विकल्प समाधि की स्थिति कहते हैं।

4) सहज निर्विकल्प समाधि स्थिति :

इस स्थिति में रहने पर सांसारिक जीवन में भी उच्चतम स्थायी तक जाते हैं। वे जो भी बोलते हैं, जो भी काम करते हैं, आत्म स्थिति में रहते हैं। ऐसे लोगों को सामान्य लोग भगवान कहते हैं।

अगर पत्री जी को गौर से देखें तो वे केवल लोक कल्याण के काम ही करते हैं। वे आत्मस्थिति में रहते हैं, वे किसी की आलोचना नहीं करते, किसी के बारे में निर्णय नहीं करते। वे आत्मा, ध्यान, ज्ञान इन तीन शब्दों के

अलावा कुछ और नहीं बोलते।

ऐसी स्थिति तक आने वाले हमेशा बिना किसी डर के, जो सत्य कहना हो निडरता से कहते हैं। ''**आत्मस्थिति में रहने वाला किसी से नहीं डरता, प्रलोभनों में नहीं झुकता।**''

पत्री जी हो, या राघवराव जी हो वे किसी से नहीं डरते, लोग क्या सोचते हैं, उनके लिए अनावश्यक है। वे वही काम करते हैं जिससे लोकेश्वर प्रसन्न होते हैं।

पृथ्वी पर मिला मानव जन्म का उद्देश्य क्या है? स्वयं को जानना, उस मार्ग में आगे बढ़ना, जो सत्य जाना है उसे औरों को भी बोध करना चाहिए। इसके लिए तीव्र इच्छा होनी चाहिए। ''मैं ही अच्छा रहूँ, मैं ही मोक्ष को पाऊं'' यदि ऐसा सोचते हैं तो तीसरी स्थिति में ही रहते हैं। लेकिन चौथी स्थिति क्या है कि सहस्त्रार स्थिति।

अर्थात इधर जो न किसी से डरना, न किसी प्रलोभन में आना, न ही संसार के आकर्षणों में आना, इस संसार में रहते हुए अपने आस-पास के लोगों को सत्य बताते हुए, सत्य में जीने योग्य बनाते हुए, उस सत्य को ऊँचे स्वर में प्रकट करने की स्थिति में होते हैं। ऐसे लोग इस पृथ्वी पर बहुत कम होते हैं।

सत्य हरिश्चंद्र को दरिद्रता आई, उन्हें यह भी पता था कि अनेक कष्ट आने पर भी निडर होकर आत्मस्थिति में जीवन जिया लेकिन कभी भी डरकर पीछे कदम नहीं डाला। इसलिए समझना चाहिए कि जो भी सत्य में जीते हैं, वे सब सहस्त्रार स्थिति को पहुंच चुके हैं। इनकी स्थिति स्वाभाविक होती है लेकिन बनावटी स्थिति नहीं।

इसीलिए ''**समाधि स्थिति अर्थात अंतरंग में उत्तर मिलने की स्थिति**''। सविकल्प स्थिति का मतलब है कि वे अपने प्रयास से चित्त को शांत रखता है। ऐसा करते-करते जब तक कुण्डलिनी शक्ति जागृत होने तक

उनका प्रयास होता है। तब तक साधना में प्रयास आवश्यक ही होता है।

निरविकल्प स्थिति अर्थात इधर कुंडलिनी जागृत होती रहती है। इधर परलोक में स्थित मास्टर्स से या, परमगुरुओं से या पूर्णात्मा से अनुसंधान होते हैं। चौथे में अब तक ध्यान में न बैठने पर भी बाहरी संसार में घूमने पर भी आत्मस्थिति में ही होते हैं। किसी भी प्रकार के प्रलोभन के अधीन न होने की स्थिति। वे सहस्त्रार स्थिति तक आने वाले हैं। इन्हें किसी भी प्रकार का भय नहीं होता, निडरता से जीवन जीते हैं।

इन चारों स्थितियों में से हम किस स्थिति में हैं यह पहले जानकर उसके बाद स्थिति को जाने के लिए प्रयास करना चाहिए। पहले उस चित्त को निश्चल करने के लिए ''जगत मिथ्या, आत्मा सत्यं'' इसे कभी भी भूलना नहीं चाहिए। जब इसे भूल जाते हैं तो चित्त संसार की ओर चला जाता है। संसार की ओर मुड़े चित्त को फिर से परमात्मा की ओर मोड़ना चाहिए। तभी कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होती रहती है। जब ऐसा होता है, तब पृथ्वी पर एक भगवान के जैसे जीवन जीता रहता है।

जो श्रद्धा साधक को होनी चाहिए

ध्यान मार्ग में आने वालों को पहले ध्यान में स्थिरता होना चाहिए, बाद में ज्ञान बढ़ना चाहिए। यदि ध्यान में बैठने के बाद भी ध्यान ठीक से नहीं हो रहा हो, तो बैठे रहना व्यर्थ महसूस होता है। उसी तरह, जो ध्यान किया जा रहा है, उससे ज्ञान भी बढ़ना चाहिए। हर विषय के बारे में समझना ही ज्ञान है।

ध्यान शुरू करने के बाद से हर दिन यह देखना चाहिए कि मैं कैसे आगे बढ़ रहा हूँ ? मेरी साधना कितनी स्थिर हो रही है ? इस प्रकार निरीक्षण करते रहना चाहिए। **इसीलिए वशिष्ठ जी ने कहा, ''विचारना ही परम ज्ञान है।''** अर्थात, विचारना करते हुए उस ज्ञान को लगातार बढ़ाते रहना चाहिए। जो कुछ सुना है, उसे यूँ ही छोड़ना नहीं चाहिए, बल्कि हर एक को सोच ना चाहिए, विचारना करते रहना चाहिए। इसी से ही विकास होता है।

हर विषय को सुन रहे हैं, लेकिन जो कुछ सुन रहे हैं उस पर कितनी श्रद्धा रख रहे हैं ? साधक की प्रगति इसी पर निर्भर होती है। जो श्रद्धा रखने वाला आगे बढ़ता रहता है। ध्यान कर रहे हों, इस ज्ञान को सीखने के मामले में लापरवाही हो, तो प्रगति उतनी तीव्रता से नहीं होगा।

इसलिए आप गौर से देखिए राघवराव जी सभी से कहते रहते हैं, ''ज्ञान बढ़ाओ, ज्ञान बढ़ाओ।'' लेकिन ''ज्ञान बढ़ाओ'' का मतलब क्या है ? इसका मतलब है कि उस ज्ञान को बढ़ाने में श्रद्धा रखना चाहिए। गुरुजन कुछ कहने के समय में, हम किसी पुस्तक पढ़ने के समय में, किसी भी बात को लापरवाही से नहीं सुनना चाहिए, लापरवाही से नहीं पढ़ना चाहिए, श्रद्धा होनी चाहिए। आध्यात्मिक जीवन में श्रद्धा एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है।

सभी महात्मा बताते हैं कि मानव श्रद्धा स्वरूप है। भगवद्गीता में बताया गया है कि श्रद्धा भी तीन प्रकार होते हैं।

1. सात्विक श्रद्धा, 2. राजसिक श्रद्धा, 3. तामसिक श्रद्धा

ये श्रद्धाएँ मानवों में कैसे होते हैं, उनसे किए गए काम, उनका

व्यवहार, उनका आहार सभी भी वैसे ही होते हैं। यानी तामसिक श्रद्धा होने वाला एक तरीके से व्यवहार करता है। राजसिक श्रद्धा होने वाला एक तरीके से व्यवहार करता है। सात्विक श्रद्धा होने वाला एक तरीके से व्यवहार करता है। इन तीनों के आहार भी अलग-अलग होते हैं।

श्रद्धा सभी के लिए एक ही शब्द है। कुछ लोग इस स्थिति में रहते हैं जो अपने मन में मौजूद गुणों के आधार पर तय नहीं कर पाते कि किस पर श्रद्धा रखना चाहिए, किस पर नहीं रखना चाहिए। तो फिर सात्विकों की श्रद्धा कैसी होती है ? राजसिकों की श्रद्धा कैसी होती है ? तामसिकों की श्रद्धा कैसी होती है ? ये तीन श्रद्धाओं के साथ राक्षस श्रद्धा के बारे में भी बताया है। अर्थात संसारिकता में तीन श्रृद्धाएं हैं, लेकिन आध्यात्मिकता में चौथा भी दिया गया है।

1. सात्विक श्रद्धाः

सात्विक गुण में रहने वाले की श्रद्धा कैसी होती है ? गुरु उनके जीवन में आने से पहले सांसारिक विषयों में सात्विकता से यानी धीरे-धीरे एक विभीषण की तरह यह सोचते रहते हैं कि गलत नहीं करना चाहिए, पाप नहीं करना चाहिए, किसी को दु:ख नहीं देना चाहिए। और जब उन्हें गुरु आने के बाद ध्यान, ज्ञान जानने के बाद वे ध्यान में आगे बढ़ते जाते हैं। आदि शंकराचार्य जी ने कहा कि सात्विक गुण ही सत्य के करीब ले जाता है।

सात्विक गुण में ही सत्य के निकट आ सकता है, लेकिन तामसिक, राजसिक गुणों वाले सत्य से दूर ही रहते हैं। इसलिए सात्विक गुणों वाले जो साधना करते हैं, महा अद्भुत होता है। उनसे किए गए यज्ञ भी अद्भुत होते हैं। वे यज्ञों को अपने नाम के लिए, प्रसिद्धि के लिए, सुख के लिए, आनंद के लिए नहीं करते। लोककल्याण के लिए करते हैं।

बहुत लोग सोचते हैं कि ध्यान करना ही पर्याप्त है, बाकी सब ज़रूरी नहीं। लेकिन जो ध्यान करते हैं, उनके लिए भी एक तरह का यज्ञ होता है। भगवत गीता से यह जान सकते हैं कि जो ध्यान नहीं करते, उनके लिए अलग-अलग तरह के यज्ञ होते हैं। तो ध्यान करने वाले कौन से यज्ञ करते

हैं ? वे ध्यान यज्ञ करते हैं। अपनी–अपनी सामर्थ्य के अनुसार वे दस लोगों को एकत्र करके ध्यान करने का अवसर प्रदान करते हैं।

आप अपनी परिधि के अनुसार छोटे–छोटे क्लासेस रख सकते हैं। राघवराव जी सैकड़ों लोगों को बता सकते हैं, पत्री जी हजारों, लाखों लोगों से ध्यान यज्ञ करवा सकते हैं।

कोई यज्ञ करना ही पर्याप्त नहीं। कोई यज्ञ करें, दान करें उसे यह सोचकर करना चाहिए कि यह मेरा धर्म है, ऐसा सात्विक स्थिति में रहने वाले ही कर सकते हैं। उन्हें सत्य पता है। यह पैसा मेरा है ऐसी भ्रांति में नहीं रहते। ज्ञानी उपनिषदों के सार को जानते हैं। इसलिए, जैसा कि ईशावास्य उपनिषद में कहा गया है, वे त्याग के गुण से युक्त होते हैं। त्याग अर्थात जो उनके पास है, उसे दस लोगों में बाँटकर स्वयं भी खाते हैं। वे इस सत्य को जानते हैं कि कुछ भी मेरा नहीं है।

जो कुछ अपना मानते हैं, उसमें से कुछ हिस्सा वे बिना कोई फल की अपेक्षा किए दस लोगों को दान देते हैं। यानी सात्विक गुण में श्रद्धा जैसे होती है, हर विषय को गौर से देखना चाहिए। वे साधना करते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं, फिर यह जानकारी प्राप्त करते हैं कि यज्ञ करना मानवों का कर्तव्य है तब ज्ञान यज्ञ करते हैं। पत्रीजी जानते हैं कि ये ज्ञानयज्ञ परमात्मा को प्रिय है, इसलिए पत्री जी करते हुए हम से भी करवा रहे हैं।

इसीलिए ज्ञानी सत्कर्म करते हुए, यज्ञकर्म करते हुए परमात्मा के और अधिक निकट होता है। और इनका मन सात्विक से शुद्ध सात्विक की ओर बढ़ता है। वे यह जानते हैं कि ध्यान ही उनका धर्म है, मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य साधना करके परमात्मा के समीप पहुँचना इसलिए वे न साधना छोड़ते हैं, न ज्ञान छोड़ते हैं, जो ज्ञान उन्होंने प्राप्त किया उसे औरों को बाँटना नहीं छोड़ते।

धन का दान, ज्ञान का दान, शक्ति का दान, वाणी का दान करते हैं, इंद्रियों का उपयोग इन सेवाओं के लिए ही करते हैं। यानी सात्विकों की श्रद्धा ऐसे होता है कि वे स्वयं अनुभव करते हुए, परोपकार के लिए हमेशा आगे

रहते हैं। वे सुख भोगते हुए भी चाहते हैं कि बाजु वाले भी सुखी रहें, वे आनंद में रहते हुए भी चाहते हैं कि बाजु वाले भी आनंद से होने के लिए श्रद्धा होती है।

ध्यान में आने का मतलब है कि सत्त्वगुण में हैं। ऐसे सात्विक श्रद्धा होने वालों का मन कभी कलुषित नहीं होता। कारण यह है कि वे जो भोजन खाते हैं, सत्त्वगुण को बढ़ाने वाला ही होता है। शाकाहार भोजन ही सत्त्वगुण को बढ़ाता है। लेकिन किसी प्राणी को हिंसा करके खाया गया मांसाहार भोजन के द्वारा सत्त्वगुण से रजोगुण में, तमोगुण में चले जाते हैं। इसलिए सात्विक लोग हमेशा शाकाहार भोजन ही लेते हैं।

इसके अलावा उस भोजन में भी किस प्रकार का भोजन करते हैं? सत्त्वगुण को बढ़ाना हो तो उसमें रस होना होगा, जो भूख को शांत करने वाला, अधिक समय तक शरीर के शक्ति को बढ़ाने वाला, ऐसे कुछ तरह के पदार्थ ही वे लेते हैं। लेकिन जो भोजन रजोगुण को बढ़ाता है, ऐसा भोजन सात्विक लोग नहीं खाते। उनका भोजन हमेशा निष्टा से होता है, इसी कारण उनका मन निश्चल स्थिति में, सात्विकता में रह पाते हैं।

यह जानते हैं कि जितनी सावधानी से भोजन किया जाए, मन उतना शुद्ध होता है। उस गुण को बढ़ाने में, ध्यान करने में, ज्ञान को बढ़ाने में, उसे बाँटने में भी श्रद्धा होता है।

इसीलिए राघवराव जी यही देखते हैं कि हर क्षण सभी का ज्ञान कैसे बढ़ाया जाए? शिष्यों को कैसे तैयार किया जाए? बातो में कोई गलती होती है तो ज्ञान घट जाता है। कर्मों में गलती होती है तो ध्यानशक्ति कम हो जाती है। इसलिए बातों में, कर्मों में छोटी सी गलती भी न हो, इस प्रकार वे अपने शिष्यों को निरंतर सुधारते रहते हैं। इसी कारण कहा जाता है कि "**सात्विक श्रद्धा उच्च स्थिति तक ले जाकर सत्य तक पहुँचाती है।**" इतना ही नहीं वे परमात्मा को प्रिय भी हो जाते हैं।

2. राजसिक श्रद्धाः

वे फल की अपेक्षा से यानी इच्छा के साथ यज्ञ करते हैं अर्थात उन्हें कोई इच्छा होती है वो इच्छा पूरा होने के लिए करते रहते हैं। वे महान कहलाने के लिए, लोग उनकी प्रशंसा करने के लिए यज्ञों को करते हैं। इन लोगों के यज्ञ भी, दान भी ऐसे ही होते हैं। उनका उद्देश्य यही होता है कि दस लोग उनकी सराहना करें, दस लोग उन्हें पहचानें।

वे जैसा भोजन करते हैं, वैसा ही उनका गुण होता है। वे जब भगवान की पूजा करते हैं या एक यज्ञ करते हैं, तो सोचते हैं कि महान काम किया। राजसिकों को भी ध्यान पर दृष्टि नहीं होता। अगर ध्यान करते भी हैं तो सांसारिक लाभों के लिए ही करते हैं। यानी अच्छे स्वास्थ्य के लिए, या इच्छाएँ पूरा होने के लिए करते हैं। इस तरह ध्यान करेंगे तो राजसिक ध्यान ही होता है।

कोई इच्छा के बिना परमात्मा का दर्शन ही चाहिए यह जानकर किया गया ध्यान सात्विक ध्यान होता है। लेकिन इच्छा से किया गया ध्यान राजसिक ध्यान होता है। बहुत लोग कहते हैं कि अगर ध्यान से कोई लाभ नहीं हो तो ध्यान क्यों ? यानी वे उन की सीमा के आधार पर ऐसा प्रश्न पूछते हैं। उन के सोच की सीमा, मन का स्वभाव वैसा ही होता है। वे राजसिक गुण में होने के कारण बिना कोई लाभ के कोई काम नहीं करते।

लेकिन जिन्होंने भगवद्गीता पढ़ा है, वेदों को, उपनिषदों का अध्ययन किया उन्हें यह स्पष्टता से पता है कि क्या इच्छा के साथ ध्यान करना चाहिए ? या नहीं ? व्यास भगवान ने कलियुग के लिए इतने वेद, इतने उपनिषद, अंत में भगवद्गीता के द्वारा यह बताया कि ध्यान कैसे करना चाहिए। तब सभी को उसी प्रकार ध्यान करना चाहिए। लेकिन जिन्होंने न कोई धर्मशास्त्रों को, न कोई सत ग्रंथों का अध्ययन किया, उनके बातों को पकड़कर ध्यान करना, राजसिक ध्यान को करना ही है।

यानी उन्हें परमात्मा पर श्रद्धा से ज़्यादा इस संसार पर श्रद्धा होती है। इसलिए वे इच्छाओं से साधानायें करते हैं, इच्छाओं से दान भी करते हैं,

इच्छाओं से यज्ञों को भी करते हैं। इस यज्ञ को करूँगा तो यह लाभ मिलेगा, इस दान को करूँगा तो यह पुण्य मिलेगा ऐसी अपेक्षा से किया गया राजसिक श्रद्धा होता है।

वे थोड़ा रजोगुण बढ़ाने वाला आहार लेते हैं। मसाले, मिर्च आदि जैसे उद्रिकतता बढ़ाने वाले आहार खाने के वजह से इनका मन हमेशा रजोगुण में ही रहता है।

3.तामसिक श्रद्धा :

ये किसी काम में भी श्रद्धा नहीं रखते। यज्ञ को भी ठीक से नहीं करते, पूजा भी केवल दिखावे के लिए करते हैं। ध्यान की तो बात छोड़ भी दीजिए। वे उस ध्यान मार्ग में नहीं आते। वे सोचते हैं कि ये पूजा-पाठ ही काफी है। आजकल संसार में बहुत से लोग ध्यान को बेकार का काम समझते हैं। लेकिन भगवान को सबसे प्रिय मार्ग तो ध्यान मार्ग ही है, योगी ही मुझे प्रिय है, ज्ञानी ही मुझे प्रिय है ऐसा भगवद्गीता में कहने पर भी उसका अर्थ नहीं समझते, इसलिए तमोगुणयुक्त श्रद्धा वाले ध्यान को उतनी महत्व नहीं देते।

अगर किसी को बीमारी हो, उठने में असमर्थता जैसी स्थिति के कारण ध्यान की शुरुआत करते भी हैं, तब भी जैसे ही बीमारी ठीक हो जाती है, वे फिर से ध्यान करना छोड़ देते हैं। ध्यान से बीमारी को दूर करने वाली एक दवा की तरह इस्तेमाल करते हैं, लेकिन यह नहीं जान पाते कि ध्यान परमात्मा तक पहुँचने का एक ही मार्ग है।

तुम इस सृष्टि का अनुभव कर रहे हो। जब यह सृष्टि ही इतनी अद्भुत है, तो उस सृष्टिकर्ता तक पहुंचेंगे तो कितना अद्भुत होगा! यह विचार तामसिकों को नहीं आता, राजसिक गुण में होने वालों को भी नहीं आता। यह तो सात्विक गुण में होने वालों को ही पता होता है।

इसीलिए देखिए हमारे गुणों के अनुसार ही हमारी श्रद्धा होती है। इसलिए श्रीकृष्ण भगवान ने कहा, "जो लोग गुणों को पार करके सत्य की ओर जाते हैं, वे ही माया को जीत सकते हैं।" जिनके पास परमात्मा के दर्शन की योग्यता नहीं है, उन्हें सत्यलोक की प्राप्ति कैसे होगी ? उन्हें मोक्ष कैसे

मिलेगा ? उन्हें आनंद कैसे मिलेगा ? वो नहीं जो मोक्ष मृत्यु के बाद मिलता है, जो आनंद मृत्यु के बाद मिलता है। यदि सच्चाई से ध्यान करोगे तो पृथ्वी पर रहते हुए ही हमेशा आनंद की स्थिति में रहना चाहिए।

यही आदि शंकराचार्य जी ने कहा **''जो सभी मोहों को छोड़कर सदा मोक्ष की स्थिति में रहने वालों को ही ध्यानी, योगी कहते हैं।''** लेकिन यदि तामसिक श्रद्धा हो, तो उनका मन किसी पर भी स्थिरता से नहीं रहता। इनको न तो पूजा पर होते हैं, न अनन्य भक्ति में रहते हैं, न एकांत भक्ति में रहते हैं, बाहरी भक्ति में स्थिरता न होने वाले करते रहते हैं। ध्यान में भी यही होता है।

वे लाभ की अपेक्षा से करते हैं, यदि लाभ न मिले तो पीछे हट जाते हैं। क्योंकि इनका मन चंचलता में होता है। इसका कारण है कि उस तरह भोजन खाने की वजह से। बासी पदार्थों को, खट्टा हो चुका, सड़ा हुआ भोजन खाते रहते हैं। ऐसे पदार्थों को खाने से मन हमेशा चंचलता में ही होता है, निश्चलता में नहीं आता।

जब मन निश्चलता में आएगा तभी ध्यान करना चाहेंगे। रजोगुण में, तमोगुण में ध्यान करने से दूर जाते रहते हैं। इसलिए कहते हैं कि **''जब गुण को बदलोगे, श्रद्धा बढ़ेगी, सत्य के निकट पहुँचोगे।''**

4.राक्षस श्रद्धा :

वे अपने शरीर को दुबला और कमजोर बना देते हैं। इसलिए भगवद्गीता में कहा गया है कि दंभ, घमंड, क्रोध जैसे गुणों में रहकर मैं हासिल कर सकता हूँ ऐसा सोचते हुए... वे अपने शरीर को दुबला और कमजोर बना देते हैं। इस तरह पंचभूतों से बना यह शरीर नाश करोगे तो शरीर दुबला और कमजोर हो जाता है, कहा गया है कि तब शरीर में स्थित मै यानी आत्मा को भी ये राक्षस ध्यानी क्षोभ पहुँचाते हैं।

क्यों कहा गया है कि ? ज़्यादा नहीं खाना चाहिए, कम नहीं खाना चाहिए। भगवद्गीता में कहा गया है कि युक्ताहार, मिताहार लेना चाहिए। लेकिन कुछ लोग पूरी तरह खाना छोड़कर पागलों की तरह ध्यान करते हैं,

अत्यधिक रूप से अपने शरीर को, मन को, आत्मा को दुबला और कमजोर बना देते हैं। इसे ही राक्षस ध्यान कहते हैं। पत्री जी ने कहा है कि ऐसा नहीं करना चाहिए।

यदि यहाँ कोई सात्विक गुण में रहते हुए सात्विक श्रद्धा हो तो वह खुद लाभ पाते हुए, दस लोगों को भी लाभ पहुँचाने वाले काम इस पृथ्वी पर रह कर भी कर सकते हैं। सभी जीव आत्म स्वरूप ही हैं, हर कोई आत्म स्वरूप ही है। जहाँ पर 'मैं' का संबोधन छोड़ोगे! जहाँ मेरा, हमारा जैसे ममत्व छोडोगे! यानी जैसे मैं का अहंकार, जैसे हमारा का ममत्व, इन दोनों को जब छोड़ोगे तब समझो कि सात्विकता में आ चुके हैं।

इस सात्विकता में आने के बाद पहले आपके व्यवहार को गौर से देखना होगा। यदि कहीं भी मैं, मेरा जैसा स्वार्थ आया है, तो समझ में आना चाहिए कि मेरा मन कलुषित हो गया है। इस कलुषित मन का कारण खाया हुआ आहार, आहार में दोष होने से मन कलुषित होने पर, सबसे पहले आहार को ठीक करेंगे तो मन भी ठीक होता है, तब जो काम करेंगे वो सही होते हैं।

क्योंकि कुछ वासनाएँ, संस्कार नहीं छूटते इसलिए कभी-कभी माया के वश में आकर फिर से ममत्व में, अहंकार में गिर जाते हैं। इसीलिए वशिष्ठ जी ने योगवाशिष्ठ में कहा है कि "विचार ही परम ज्ञान है।" अर्थात हर समय पर विचारना करते रहना चाहिए।

मैं किसे श्रद्धा से कर रहा हूँ ? क्या साधना में श्रद्धा है ? क्या ज्ञान में श्रद्धा है ? जो कुछ मेरा है क्या मैं उसे परोपकार के लिए खर्च कर रहा हूँ ? या नहीं ? यह विचारना करना चाहिए। ये सारी सृष्टि ईश्वर की ही है, कहा गया है ना! तो फिर जो कुछ मुझे दिया गया उसे दस लोगों को देने के लिए भगवान ने मुझे अवसर दिया है, अगर हर क्षण ऐसा सोच सकें तो विनम्रता बढ़ती है।

"जितने विनम्र होते हैं, उतनी ही प्रगति ध्यान में होती है।" जैसे पौधा जितना बढ़ता है उतना ही झुकता है। उसी तरह, आप जितना अधिक प्रगति करते हो, उतना अधिक झुकना चाहिए। जब आप झुकते हैं, तब आप और भी अधिक ऊँचाई तक बढेंगे। "**विनम्रता हमें उर्द्व लोकों की ओर ले**

जाता है। अहंकार अधो लोकों की ओर ले जाता है।'' इसीलिए हर साधक को सात्विक श्रद्धा में ही होना चाहिए।

जब तक ध्यान मार्ग में आने से पहले तब तक जो भी श्रद्धायें हो अनावश्यक है। लेकिन जब साधना के मार्ग में आ जाते हैं, तब एक बात गमन करनी चाहिए, यह जानना चाहिए कि साधना यानी ज्ञान को बढ़ाने के लिए, परमात्मा तक पहुँचने के लिए।

तुम चाहे जितने भी ज्ञानी क्यों न हो, यदि **''सेवा, प्रेम, त्याग से दूर हो जाओगे तो अहंकार बढ़ता जाएगा।''** त्याग होना चाहिए, प्रेम होना चाहिए, सेवा होनी चाहिए। इन तीनों से विनम्रता आती है। इस विनम्रता से ही परमात्मा के निकट जा सकते हैं। मैं यह नहीं कर रहा हूँ, मैं त्रिकरण शुद्धि से परमात्मा को पाने के लिए ध्यान कर रहा हूँ इसलिए यह सदा याद रखना चाहिए कि वे (परमात्मा) मुझे माया में फँसने से बचा रहा है।

सात्विक गुण को बढ़ाने के लिए श्रद्धा होना चाहिए। तभी साधना, ज्ञान बढ़कर परमात्मा के निकट होते हैं। इसीलिए यह जनना चाहिए कि न तो तामसिक श्रद्धा, न तो राजसिक श्रद्धा, सब को सात्विक श्रद्धा होनी चाहिए।

आत्मज्ञानि बनना है तो ?

सहजता से ऐसा लगता है कि सभी विषयों को जानते हैं, लेकिन कुछ परिस्थितियों में उन्हें भूलकर व्यवहार करते हैं। जो कुछ सीखा उसे जीवन में वैसे ही आचरण में ला सकें, तभी हम गुरुओं के अपेक्षित स्तर तक पहुँच चुके।

इसलिए मैं कितनी हद तक आचरण कर रहा हूँ ? मैं जीव की तरह नहीं, बल्कि भगवान की तरह बनने के लिए क्या करना चाहिए ? मेरा व्यवहार कैसा होना चाहिए ? यह जानना चाहिए। उसे आचरण में भी रखना चाहिए।

सिर्फ साधना करके और चार बातें बोलने से आप ज्ञानी नहीं बन सकते, सब कुछ आचरण में होना चाहिए। इसके लिए साधना करके मन में मौजूद मैल को दूर करना होगा, बुद्धि को विकसित करके, अंतर प्रज्ञा को बढ़ाने पर ही ज्ञान को आचरण में ला सकेंगे।

इस संसार में अनेक प्रकार के लोग होते हैं।

कुछ लोग देह दृष्टि में रहते हैं, कुछ लोग मनोदृष्टि में रहते हैं, कुछ लोग आत्मा दृष्टि में रहते हैं। जो लोग आत्म दृष्टि में होते हैं, वे ही ज्ञानी होते हैं।

तो फिर जानेंगे देह दृष्टि में रहने वाले कैसा व्यवहार करते हैं ? मनोदृष्टि में रहने वाले कैसा व्यवहार करते हैं ? आत्मा दृष्टि में रहने वाले कैसा व्यवहार करते हैं ?

1) देह दृष्टि में रहने वाले :

एक व्यक्ति को देखकर वे काले हैं, ये गोरे हैं, ये लंबे हैं, वे छोटे हैं इस तरह उनके बाहरी रूप को यानी दिखाई देने वाले शरीर को ही देखकर विश्लेषण करते हैं, वे सभी शरीर की दृष्टि में रहने वाले ही होते हैं। ऐसे लोग उससे आगे नहीं बढ़ सकते, उन्हें ज्ञानी बनने में बहुत समय लगेगा।

2) मनोदृष्टि में रहने वाले :

ये मनोदृष्टि होने वाले वह महान है, वह पंडित है, वह राजनीतिज्ञ है या उसे महान कलाओं का ज्ञान है इस प्रकार वे दूसरों में मौजूद महानता को देखते हैं। लेकिन ये सभी संसारिक महानताएँ ही हैं। यानी उन की संपत्ति देखकर, उनके पास बहुत कुछ है, इस तरह हिसाब करते रहते हैं। यानी उनके मन में भी वैसी ही उन्नति के लिए कोशिश कर चुके, इसलिए जब वे किसी को उस दिशा में उन्नत होते देखते हैं, तो उन्हें महान मानकर बार-बार उन्हीं विषयों का जिक्र करते रहते हैं। यही मनोदृष्टि है।

अब पृथ्वी पर संसारिकता में जीने वाले सभी इन दोनों दृष्टिकोणों के साथ जी रहे हैं। इसलिए जब कोई फिल्म अभिनेता आता है, कोई राजनीतिज्ञ आता है तो लोग झुंड के झुंड जाते हैं।

3) आत्मा दृष्टि में होने वाले :

''आत्मदृष्टि होने वाले सभी में आत्मा को ही दर्शन करते हैं, उन्हें सभी आत्मस्वरूप जैसे ही दिखाई देते हैं।'' ऐसे लोगों को सामने वाला महान है ? गरीब है ? राजनीतिज्ञ है ? धनवान है ? उसके पास कितनी संपत्ति है ? ये सब इनको आवश्यक नहीं। जो सभी में आत्मा को दर्शन करने वाला ही ज्ञानी है ऐसा श्रीकृष्ण भगवान ने भगवद्गीता में कहा है।

श्लोः विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ।। (भ.गी.5-18)

एक ज्ञानी ब्रह्म विद्या को सीखे ब्राह्मण में, कुत्ते का मांस खाने वाला चांडाल में यानी अत्यंत अधम स्थिति वाले में भी आत्मा को ही दर्शन करता है। उसी तरह जानवरों में चाहे वह महान स्थिति होने वाला गाय हो, मध्यम स्थिति होने वाला हाथी हो, अधम स्थिति होने वाला कुत्ता हो उनमें भी आत्मा को ही दर्शन करता है। इस तरह जो सभी जीवों में आत्मा का दर्शन करने वाला ही पंडित यानी ज्ञानी होता है।

ज्ञानी कभी भी सामने वाले के व्यवहार के आधार पर यह नहीं कहता कि वह मुझे पसंद है, नहीं पसंद है, वह समभाव में रहता है। वेदों का

पाठ करने वाला महान नहीं होता, जो पढ़ी हुई बातों को आचरण में रखता है, वही महान है।

इसीलिए कहा जाता है कि ''भगवान बाह्य प्रिय नहीं, भाव प्रिय हैं।'' यदि कोई बाहर से कितना भी महान हो, लेकिन उसका भाव अधम स्थिति में हो, तो वह महान नहीं है।

गो माता महान है इसलिए उसकी पूजा करते हैं, बकरी, मुर्गी, मछली नीच हैं इसलिए उन्हें खाते हैं ऐसा सोचने वाले खुद को चाहे महान मान लें, लेकिन भगवान की दृष्टि में वे महान नहीं होते। पत्री जी ने हमें यह वास्तविक सत्य का बोध किया है कि सभी आत्मस्वरूप ही हैं ''पिपीलादि ब्रह्मा पर्यंतं'' अर्थात एक चींटी से लेकर ब्रह्मदेव तक सभी आत्म स्वरूप ही हैं। उन्होंने हमें यह भी समझाया कि ''सृष्टि में केवल मानव ही नहीं, समस्त चराचर जीव भी आत्मस्वरूप ही हैं'' इस प्रकार ध्यान के मार्ग में लाकर हमारी दृष्टि आत्मा की ओर मोड़ दिया।

ध्यान करने पर भी, ज्ञान सुनने पर भी कुछ समझ में नहीं आ रहा है अर्थात साधना के द्वारा ग्रहण शक्ति, श्रवण शक्ति को बढ़ा नहीं पा रहे हैं। कारण यह है कि श्रवण के तीन प्रकार होते हैं।

1) अधम श्रवण, 2) मध्यम श्रवण, 3) उत्तम श्रवण

1) अधम श्रवण :

अधम श्रवण वाला खुद के लिए भी उपयोगी नहीं होता। गुरु द्वारा कहे गए वचनों को आचरण नहीं कर पाता। जितनी देर ध्यान करें तो स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, ध्यान करने से सभी संकल्प पूरी होंगी, इस तरह स्वास्थ्य के लिए, संकल्पों को पूरी करने के लिए किया गया ध्यान से आत्मज्ञान नहीं आता। आत्मज्ञान न होने पर समभाव नहीं होता, सत्य के समीप भी नहीं पहुँच सकते।

इस पृथ्वी पर आपके व्यवहार के आधार पर ही परमात्मा के समीप पहुँचा जा सकता है। पृथ्वी पर गुरु के वचनों को सुनकर आप जितना सत्य में जीते हैं, उतना ही आप सत्य के निकट पहुँचते हैं। चाहे गुरु कितना भी कहें,

चाहे शास्त्र कितना भी बताएं, चाहे धर्म कितना भी बोध करे, चाहे आत्मा के

महानता को जानने पर भी यदि तुम त्रिकरण शुद्धि के बिना, तुम इच्छाएँ ही माँग रहे हो अर्थात इसे अधम श्रवण कहा जाता है।

2) मध्यम श्रवण :

वह खुद ही साधना करके कुछ परिणामों को प्राप्त करता है। वह जानता है कि मैं आत्मा हूँ लेकिन सेवा भाव नहीं होता, मोक्ष नहीं मिलता। यह मध्यम श्रवण है।

3) उत्तम श्रवण :

वह खुद ज्ञानी बनते हुए, सभी को ज्ञानी बनाने का प्रयास करता है। जैसे गुरु करते हैं, वैसे ही वह भी उस मार्ग में चलते हुए दस लोगों को आत्मज्ञान का बोध करते हैं। इस प्रकार दस लोगों के लिए प्रयास करना उत्तम शिष्य का लक्षण है, इसलिए सेवा परमात्मा को अत्यंत प्रिय काम है। सेवा, त्याग, प्रेम ये तीन बहुत महान शस्त्र हैं।

संसार की सेवा कर रहा हूँ यानी वहाँ शरीर को नहीं देखते, मन को नहीं देखते क्योंकि गुरु ने कहा है कि सभी जीव आत्मस्वरूप ही हैं, इसलिए वह सभी जीवों से प्रेम करते हैं। वैसे ही समय को, पैसे को, वाणी को त्याग करके, जब कोई अपने साथियों के कष्टों में, दु:खों में, उनके साथ रहकर उनके अज्ञानता को निकालने के लिए थोड़ा सा ज्ञान सिखाना ही नहीं, उन्हें समझाते हैं कि इन दु:खों के, कष्टों के कारण अज्ञानता में किए गए गलत कामों के, पाप कामों के वजह ऐसा उन्हें समझाकर विवरण देते हैं कि वे भी आत्मस्वरूप ही हैं। तब उन से भी ध्यान करवाने से वे भी ज्ञानी बनते हैं।

इसीलिए भगवद्गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है पंडिता: समदर्शिन:। आत्मा सर्वव्यापी सब जगह, सब में आत्मा ही है।

इसलिए कहा गया है ‘‘सभी जीवों की सेवा करना ही सर्वेश्वर की सेवा है।’’ जब सभी जीवों की सेवा करेंगे तो आत्मा की सेवा करने के समान है। वही सर्वेश्वर इस पृथ्वी पर आत्माओं को सृष्टि करके भेज रहा है। सभी उन्ही के अंश हैं। इन अंशात्माओं को पूर्ण आत्मा बनने के लिए, इस पृथ्वी

जैसे विद्यालय में ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

सद्गुरु के बात को उत्तम श्रवण के जैसे स्वीकार करके, बगल वालों से भी उसका आचरण करवाने का प्रयास करना चाहिए। और ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' कहते हैं तब सभी जीवों को प्रेम करते हुए आत्मदृष्टि को और अधिक विस्तार करना चाहिए।

तुकाराम अपने घर में बैठकर पांडुरंग के भक्ति गीत गाया करते थे। उन गीतों को ''अभंग'' कहते हैं। एक दिन जब वे ऐसे ही गा रहे थे, तो एक कुत्ता आकर चावल की कटोरी लेकर चला जा रहा था। तब तुकाराम ने कहा पांडुरंग... रुको रुको, सूखा चावल कैसे खाओगे? थोड़ा घी तो डालने दो। उस तरह तुकाराम ने उस कुत्ते में भी पांडुरंग का ही दर्शन करके तुकाराम शरीर के साथ स्वर्ग को जा सके अर्थात इस पृथ्वी पर हमारा बात, विचार, कर्म ऐसे भाव में होना चाहिए जैसे सारा सृष्टि आत्म स्वरूप ही है।

आपको किसी भी जीव को कष्ट देने का हक नहीं, हिंसा करने का हक नहीं है। आप आत्मा के जैसे इस पृथ्वी पर आकर तरह-तरह के शरीर धारण करके पाठों को सीखते हुए अंततः मानव जन्म में प्रवेश करके, अंतिम जन्म में गुरु के द्वारा आत्मज्ञान सीख कर भगवान बनकर शरीर को छोड़ना चाहिए। जीव के जैसे आने वाले भगवान बनना चाहिए।

अगर गुरु बगल में रहकर कितनी भी बातें बता रहे हों, लेकिन पिछले जन्म की वासनाओं, संस्कारों के कारण यदि अभी भी संसार की ओर ही झुकाव दिखा रहे हो तो इसका साफ़ मतलब है कि ध्यान होने पर भी सही ज्ञान प्राप्त नहीं किया।

लेकिन भगवान का नियम है कि इस पृथ्वी पर आकर यह जानना है कि खुद वही भगवान है, तब तक पृथ्वी पर जन्म लेना ही पड़ेगा। इसीलिए शारीरिक दृष्टि, मानसिक दृष्टि को कम करके आत्मदृष्टि को बढ़ाना चाहिए। जब आत्मदृष्टि बढ़ाएंगे तभी आत्मज्ञान प्राप्त होगा। जब आत्मज्ञान बढ़ेगा, तब ही वे भगवान के जैसे बढ़कर सत्यलोक को जाते हैं।

सत्य, धर्म कब नाश होंगे ?

हम सत्य, धर्म जैसे शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, बोल रहे हैं। लेकिन वह सत्य, धर्म कब नाश होते हैं ? कैसे नाश हो जायेगा ? यह जानेंगे। धर्म ऐसा विषय है जिसे आचरण करना चाहिए, सत्य ऐसा विषय है जिसे जानना चाहिए। यदि धर्म दूसरों को बोध करते हुए बातों में ही व्यक्त कर रहे हो तो खुद आचरण नहीं किया तो तब धर्म का नाश हो जाता है।

बहुत लोग धर्म के बारे में बताते हैं, लेकिन उनके जीवन में आचरण नहीं होता। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जब धर्म का आचरण नहीं किया जाता तब धर्म का नाश हो जाता है। और जब पीठों पर बैठे पीठाधिपति भी कहते हैं कि हम धर्म की रक्षा कर रहे हैं, लेकिन वे भी अर्थ, काम की आशा में, आकर्षणों में फँसे रहते हैं, तब वे धर्म को जानते हुए भी आचरण नहीं करते, धर्म को जानते हुए भी बताते नहीं, सत्य जानते हुए भी नहीं बताते तब उनमें धर्म क्षीण हो जाता है।

हर एक को सत्य बताना चाहिए, सत्य को जानने वाला ही धर्म का आचरण कर सकेगा यह बात उन जगद्गुरुओं को पता था, इसलिए ही पीठों की स्थापना किया गया था। तो फिर वे क्यों नहीं बता रहे हैं ? वे इसका एक ही उत्तर देते हैं कि उन्हें समझने का स्थर नहीं है, इसलिए उनके लिए इतना ही पर्याप्त है कहकर उन्होंने असत्य को ही विस्तृत प्रचार किया।

इसीलिए लोग सत्य को जाने बिना असत्य में ही जीते हुए उसी को सही मानकर धर्म के आचरण से दूर हो गए। सत्य को जानने वाला ही धर्म का आचरण कर सकता है। गलती कहाँ हो रही है ? धर्म की रक्षा करेंगे कहकर पीठों पर बैठकर, मंचों पर चढ़कर उपन्यास देने वाले ही धर्म को बचा नहीं सके। क्योंकि ? माया का प्रभाव ही समझना होगा।

जब मनुष्य में स्वार्थ बुद्धि आती है, तब वह धर्म का आचरण नहीं कर सकता। जब आशा, स्वार्थ मनुष्य में प्रवेश करते हैं, तब वह माया के वश

में हो जाता है। आशा होना स्वाभाविक है, लेकिन आजकल आशा को पार करके अत्याशा में प्रवेश कर रहे हैं। अत्याशा तो और भी भयानक है। तो फिर इस अधर्म को कौन नाश कर सकता है ?

हमें जिसने सृष्टि किया वही भगवान इस अधर्म का नाश कर सकता है। इसी अधर्म का नाश करने के लिए, असत्य को मिटाने के लिए वही भगवान अवतारों के रूप में, या सद्गुरुओं के रूप में पृथ्वी पर अवतार लेकर सत्य को बताकर, धर्म की रक्षा कर रहा है।

क्या है सत्य ? जिसका नाश नहीं होता, वही सत्य है। तो फिर क्या नाश नहीं होता ? भगवान एक ही है जिसका नाश नहीं होता। तो भगवान कहाँ रहता है ? यानी आमतौर पर जबसे हमें समझ आने के बाद से हम मानते आ रहे हैं कि भगवान मूर्तियों में रहते हैं, मंदिरों में रहते हैं। लेकिन उन मूर्तियाँ को पत्थर से हमने ही बनवाई है।

बहुत अल्प चैतन्य होने वाले मूर्तियों को, यदि अत्यधिक चैतन्य वाला मनुष्य आश्रय लेने पर भी सत्य को नहीं जान सकता। इसलिए ही गुरुओं ने स्पष्टता से बताया है कि सत्य यही है, शाश्वत है, वो सत्य, वो भगवान कहीं बाहर नहीं है, वह तुम्हारे भीतर आत्मा के रूप में है। अगर तुम भगवान को जानना चाहते हो, तो बाह्य में ढूँढने से नहीं मिलेगा। तुम अंतरग में जाओगे, तभी मिलेगा। यही परम सत्य है जिसे गुरुओं ने लोगों को बताया।

तो उस स्तर पर न होने वाले समझ नहीं पा रहे हैं। गुरु जी आकर धर्म के बारे में, सत्य के बारे में बताने पर भी आचरण में रख नहीं पा रहे हैं। यानी वे माया के वश हो रहे हैं। क्यों माया के वश में आ रहे हैं ? क्योंकि वे अपने गुणों को नहीं बदले बिना तमोगुण में, रजोगुण में ही रहना। वे ही माया के वश में आकर धर्म से, सत्य से दूर हो जाते हैं। लेकिन जो सत्त्वगुण में होते हैं, वे माया से बाहर निकल आते हैं।

जो नहीं है उस पर भ्रांति होना ही माया है, ऐसे कई उदाहरणों के द्वारा गुरुओं ने हमें मालूम करवाया है। फिर भी असत्य, अधर्म का अब भी आश्रय ले रहे हैं। जब गुरुजी ने यह बताया कि आत्मा ही दैव है, आत्मा तक

पहुँचने का एकमात्र मार्ग ध्यान है, तब जिसे भी भगवान पर प्रेम होने वाला हर एक ध्यान मार्ग का ही आश्रय लेता है। उसी ध्यान में आगे बढ़ते हैं।

भगवान के प्रति जितनी तीव्र प्रेम होता है, भक्ति होता है, उनके जीवन में ध्यान को कभी नहीं छोड़ते। लेकिन देखिए, जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं, माया भी अपना प्रभाव उतनी ही तीव्रता से दिखाती है। क्योंकि भगवान के हाथ में माया होती है, इसलिए कि हमारी साधना सही दिशा में है ? कष्टों के आने पर रुक जाते हैं ? इस तरह के कष्टों से हमें परीक्षाएँ रखते रहते हैं।

चाहे कितनी परीक्षाएँ रखने पर कष्टों को आने दीजिए, दुःखों को आने दीजिए, कुछ भी आने दीजिए, जब तक ध्यान को बिना छोड़े करते हो, तभी समझना होगा कि सत्य को प्रेम करता है, सत्य का ही आश्रय लेता है। लेकिन ध्यान में आने के बाद भी आप सोचते हैं कि हमें कुछ भी लाभ नहीं हुआ, और कष्ट बढ़ते जा रहे हैं, इससे अच्छा तो पूजा-पाठ करने से ही शांति है, ऐसे अज्ञानपूर्ण विचार अगर आपके मन में आ रहे हैं, तो जानना चाहिए कि आप माया के वश में आकर सत्य से, धर्म से दूर हो रहे हैं।

इस मार्ग में परीक्षाएँ होती हैं। क्योंकि सांसारिक वस्तुओं को खरीदते वक्त बिना परखे कुछ नहीं खरीदते। उसकी क्वालिटी क्या है ? वह कितने समय तक टिकेगा ? कैसे होगा देखकर खरीदते हैं।

अपने बच्चों को किसी स्कूल में दाखिला करना हो तो आप चार तरह के स्कूलों को घूम कर कहाँ अच्छा पढ़ाई होती है ? कहाँ अच्छा अनुशासन है ? ऐसा विचार करके स्कूल में दाखिला दिलाते हैं। जब तुम परमात्मा तक पहुँचने के लिए इस मार्ग में आए हो, तो क्या तुम पृथ्वी पर रहते हुए धर्म में टिके हो ? क्या कठिनाई आने पर भी सत्य को नहीं छोड़ा ना ? इसलिए तुमको कष्ट, दुःख जैसी परीक्षाएँ देकर तुम टिके रहोगे ? या पार करोगे ? यह परमात्मा देखता है।

एक बार जानिए कि श्रेयो मार्ग को प्राप्त करना कितना कठिन है, यह केवल तीन अक्षरों वाला मार्ग नहीं है। जीव प्रेयो मार्ग में जाना ही पसंद

करता है, लेकिन श्रेयो मार्ग में जो कठिनाइयां आती है उनको सहना उसे पसंद नहीं होता। इसीलिए भगवद्गीता में

श्लोः मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः ।। (भ.गीः 7-3)

ताः हज़ारों मनुष्यों में कोई एक ही मोक्ष सिद्धि के लिए प्रयास करता है। वैसे प्रयास करने में भी हज़ारों लोगों में कोई एक ही यथार्थता से मुझे जान पाता है।

यानी श्रेयो मार्ग को प्राप्त करना है तो सहन, भगवान के प्रति भक्ति, प्रेम ये सभी हम में होने पर चाहे कितनी भी कठिनाइयाँ क्यों न हो सत्य को छोड़े बिना पकड़ कर रखते हैं। इस तरह जब सत्य को पकड़ा हो तब सांसारिक जीवन में भी धर्ममय जीवन जीते हैं।

खेत में फसल बोने के बाद उस फसल को बढ़ाने के लिए घर आने तक किसान बहुत मेहनत करता है। लेकिन खरपतवार उगाने के लिए ज़्यादा मेहनत करने की ज़रूरत नहीं होती। वे अपने आप ही उगते हैं, खेत को बर्बाद कर देते हैं।

वैसे ही सत्य को जानने के लिए, धर्म का आचरण करने के लिए जीव को बहुत मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन मनुष्य में असत्य, अधर्म तो बिना किसी प्रयास के ही, खरपतवार की तरह उगते हैं। क्योंकि जिनमें सुख की भ्रांति, सुख की लालसा होती है, वे अधर्म में ही जीते हैं, असत्य का ही आश्रय लेते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि जो सांसारिक सुखों, भोगों को चाहते हैं, उसे योग कभी प्राप्त नहीं होता।

महाभारत में कौरव-पांडवों की कथा देखें तो, जो राज्य उसका नहीं था, उसे अपना मानकर युद्ध का कारण बना धृतराष्ट्र। राज्य उसका नहीं था, उसे अपने छोटे भाई के बेटों को सौंपना चाहिए था। क्योंकि ? वह नेत्रहीन था, इसलिए उसे राज करने का अधिकार नहीं था। पांडु राज को ही राज्याभिषेक हुआ था, इसलिए उसके पुत्र ही राजा होने चाहिए। यही धर्म है। लेकिन धर्म को जानते हुए भी धृतराष्ट्र ममत्व के कारण अपने पुत्रों को सम्राट बनाने के

लिए उसने अधर्म से, अन्याय से विचार करने की वजह से सारे अनर्थ हुए। अंत में प्रजा का नाश हो गया।

इस नाश का कारण कृष्ण पर गांधारी ने निंदा डाला, लेकिन यदि सोचे तो इसका कारण धृतराष्ट्र की अधर्मपूर्ण सोच ही थी। अगर धर्म की रक्षा करना है तो पहले सही सोचने का तरीका होना चाहिए। धर्म का आचरण करना हो तो ? पहले सत्य को जानना होगा। सत्य अर्थात भगवान। भगवान कौन है ? आत्मा ही भगवान है। कहाँ रहता है ? सभी जीवों में अंतर्यामी जैसे स्थित है। सभी जीवों में ही नहीं, बल्कि सारे सृष्टि में वे ही हैं।

''अहं ब्रह्मास्मि'', ''तत्त्वमसि'', ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' जैसे बातों को हम ने जाना है, लेकिन वो भगवान हमारे बगल में ही है, हमारे साथ भी हैं, हमारे घर में, हमारे साथ-साथ, हमारे जोडी के जैसे मौजूद है इस अनुभूति को हम खो बैठते हैं, एक एक बार जब ममत्व अधिक हो जाता है, जब अहंकार बढ़ जाता है, तब हम मोह में पड़कर अर्धम के ओर सोचते रहते हैं कि मैं जो भी करूं वो सही है।

क्योंकि जब अद्वैत बुद्धि होती है, तब हमारे विचार परमात्मा की ओर जाते हैं। जब द्वैत बुद्धि होती है, तब विचार संसार की ओर जाते हैं। इसलिए शुद्ध बुद्धि वाला अच्छे से धर्म को समझते हुए, सत्य का आचरण करते हुए सुखमय जीवन जीता है। लेकिन जो अधर्म का आचरण करता है, वह संसार की ओर कदम डालते हुए चाहे जितना कमाने पर भी, अंततः दुख में ही रहता है।

इसलिए हमारे बुज़ुर्ग कहते हैं, ''**तुम धर्म की रक्षा करोगे तो वही धर्म दैव बनकर तुम्हारी रक्षा करेगा।**'' धर्म भगवान बन जाना यानी भगवान को धर्म पसंद है। धर्म के आचरण में जो कोई कसूर करेगा उसे दंड अवश्य मिलेगा। भगवद्गीता में कहा ना ?

श्लोः परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।। (भ.गीः4-8)

ताः साधु सज्जनों की रक्षा के लिए, दुष्टों के विनाश करने के लिए

धर्म स्थापना के लिए मैं हर युग में अवतार लेता हूँ।

साधु यानी जिन्होंने सत्य को जाना है, पवित्रता होने वाले यानी जो सत्य में जी रहे हैं। सज्जन यानी जो सत्य की खोज में प्रयास कर रहे हैं। ऐसे लोगों को हानि पहुँचाना ही धर्म के विरुद्ध व्यवहार करना है। सत्य को हानि पहुँचाना यानी धर्म को छोड़कर अधर्म में जीना।

पूर्वकाल में जब ऋषि तपस्या करते थे, तब राक्षस उन्हें कष्ट देते थे। तब कोई न कोई आकर उनकी रक्षा करता था। क्योंकि वे ऋषि कभी किसी के काम में दखल नहीं देते, वे अपने धर्म का पालन करते थे। लेकिन जो राक्षस उस धर्म को हानि पहुँचाते थे, उनका संहार हुआ था। इसीलिए जो धर्म का आश्रय लेने वालों के जीवन में वो धर्म ही दैव बनता है।

इसीलिए धर्म को कभी भी हानि नहीं पहुँचानी चाहिए। सामने वाले को सिर्फ बातें बोलना ही नहीं, धर्म यानी तुम स्वयं आचरण करके उस आचरण से जो परिणाम मिला उसे बगल वाले को बताना चाहिए। इतना ही नहीं बातें बोलकर अगर आचरण में कुछ नहीं हो तो वही धर्म अधर्म हो जाता है।

इसीलिए पत्री जी से सिखाया गया धर्म क्या है? जीवों को हिंसा नहीं करनी चाहिए। इसीलिए "जो पृथ्वी पर धर्म का आचरण करने वाले बहुत शीघ्रता से सत्य के निकट पहुँचते हैं"। उनका जीवन विधान सत्य बन जाता है।

इसीलिए गुरु जी पृथ्वी पर आकर सबसे पहले बताते हैं कि धर्म क्या है। बिना कुछ बताए बस ध्यान करो ऐसा नहीं कहते। सांसारिक धर्मों को बताते हैं, आध्यात्मिक धर्म भी बताते हैं। परिवार में रहने पर भी, समाज में रहने पर भी तुम्हें कैसे व्यवहार करना हो वैसा व्यवहार करना ही सांसारिक धर्म है। लेकिन तुम्हें आध्यात्मिक धर्म का आचरण करना है तो साधना करना चाहिए, ईश्वर के पसंदीदा कामों को पृथ्वी पर करना चाहिए।

"सत्य का आश्रय लेने वालों का जीवन वैभवशाली है।" अर्थात वे जानते हैं, सांसारिक जीवन में धर्मपूर्वक रहते हैं। हम भले ही सब कुछ जानने

पर भी सांसारिक जीवन में धर्मपूर्वक नहीं जी पा रहे हैं, तो साधना व्यर्थ है। इसीलिए अपने दोस्तों पर प्रेम नहीं, अपने बच्चों पर प्रेम नहीं सभी को समानता से प्रेम करना होगा। ऐसा प्रेम कर पा रहे हो तो यानी धर्म में हैं।

हमें उस धर्म के बारे में और अधिक जानना हो तो हमें अपने ही व्यवहार को खुद ही निरीक्षण करना चाहिए, कोई बाहर से आकर पाठों को नहीं बताते। तुम्हें खुद को निरीक्षण करते हुए अपने चारों ओर के संसार को निरीक्षण करते हुए, सत्य में जीते हुए, धर्म का आचरण करते हुए जीना ही योगी का लक्षण है। उसी तरह सांसारिक जीवन में स्वार्थबुद्धि को छोड़कर त्यागबुद्धि से रह सकें तो धर्म का आचरण करना ही है।

हम खाएँगे तो हमारा पेट भरेगा लेकिन दस लोगों को खिलाएँ तो ऐसे करने से भगवान का पसंदीदा काम करना ही है। ये सब करते समय हमें ऐसा सोचना चाहिए कि भगवान ने मुझे दस लोगों को खिलाने का अवसर, दस लोगों को बताने का अवसर दे रहे हैं।

सत्य का आश्रय लेकर, धर्ममय जीवन जीते हुए सांसारिकता में नाम प्रतिष्ठा आते हैं यानी सभी हमें महान के जैसे पहचानते हैं, हम महान धनवान भी बन सकते हैं, वैसे ही कई लोग आत्म बंधु भी होंगे। हमारे आसपास हमें प्रेम करने वाले ही होंगे। इसलिए हमें भी सभी को ध्यान की ओर मोड़ते हुए आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार सत्य का, धर्म का आचरण करते हुए हमें और आगे बढ़ते जाना चाहिए।

परा प्रकृति - अपरा प्रकृति

भगवान के बारे में कितने बार, कितने विषय जानने पर भी और जानने को कुछ न कुछ तो रहता ही है। इस सृष्टि को सृष्टि करने वाले परमात्मा को जानने के लिए ही यह मानव जीवन मिला यह बात ध्यान मार्ग में आने के बाद ही समझ में आया।

इस मार्ग में आने से पहले तक लोग यही सोचते हैं कि ये मानव जीवन बहुत महान है, ये जीवन अनुभव लेने के लिए, एन्जॉय करने के लिए मिला है। कोई सुंदर हो तो महान मानते हैं, धन हो तो महान मानते हैं, पद हो तो महान मानते हैं, डिग्रियाँ हों तो महान मानते हुए लेकिन पृथ्वी पर क्यों आए, किस लिए आए जाने बिना ही, बस जीवन को भोगने के लिए ही आए हैं, ऐसे सोचते हुए जीते हैं।

लेकिन, कौन से पूर्वजन्म का पुण्य है ये नहीं जानते। आपके जीवन में सद्गुरु आने के बाद तब यह जीवन क्यों ? क्या करने के लिए ? मानव जन्म का कारण क्या है ? ये सब बातें समझ में आते हैं, तब यह जीवन बहुत अद्भुत होता है।

इसलिए महात्मा लोग कहते हैं, **''अगर करोड़ों जन्म लेने के बाद भी सद्गुरु नहीं मिलते, तो तुम्हारे शरीर के अंदर ही निवास करने वाले परमात्मा को तुम नहीं जान सकते, मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते।''** पत्री जी हमारे जीवन में आने से पहले तक हमारी दृष्टि पूरी तरह से धन-दौलत पर, संतान पर, रिश्तेदारों पर, शरीर से जुड़े बंधनों पर ही टिकी हुई थी। लेकिन पत्री जी हमारे जीवन में आने के बाद उन सभी बंधनों को एक तरफ रखकर अपनी दृष्टि भगवान पर रख दिया।

जब तक किसी के जीवन में सद्गुरु नहीं आते, तब तक परमात्मा से दी गई इस सारी सृष्टि का अनुभव करते हुए भी वे असंतुष्ट जीवन ही जीते हैं। लेकिन जब वे ध्यान मार्ग में आते हैं, तब धन-संपत्ति की कोई आशा न रखते

हुए संतुष्ट जीवन जीने लगते हैं। हम गौर से देंखें, तो अज्ञान से ज्ञान की ओर आते हैं, तब हमेशा संतुष्ट जीवन ही होता है।

अगर कभी असंतुष्ट हो, तो वो किसमें होता है ? अर्थात और ज्ञान प्राप्त करना है, और साधना करना है ऐसा एक छोटा सा असंतुष्ट रहता है, वह रहना भी चाहिए। इसलिए ही भगवान बुद्ध कहते हैं, सांसारिक जीवन में संतुष्ट के साथ जीना चाहिए, लेकिन आध्यात्मिक जीवन में असंतुष्ट के साथ जीना चाहिए।

पृथ्वी पर मानव जन्म का उद्देश्य क्या है ? जब तक यह शरीर है तभी इस सृष्टि को सृष्टि करने वाले सृष्टिकर्ता के बारे में जान लेना चाहिए। लेकिन उनके बारे में जानना है तो यानी जो निराकार भगवान इन भौतिक नेत्रों से दिखाई नहीं देते। इसलिए हमें अपनी स्थूल दृष्टि को सूक्ष्म दृष्टि में लाना चाहिए, अर्थात आँखें बंद करके अपने अंतर में, और भी गहराई में जाना चाहिए।

जब हम बाह्य में देखते हैं तो हमारी दृष्टि सभी दिशाओं में होती है। लेकिन जब हम आँखें बंद करके "श्वास पर ध्यान।" रखते हुए उस श्वास के द्वारा अंतर में जाते हैं, तभी परमात्मा का दर्शन प्राप्त होता है। बहुत से लोग साधना करने पर भी आत्म दर्शन नहीं हुआ ऐसा कहते हुए निरुत्साह होते हैं। इसलिए साधक में कभी भी निराशा या निरुत्साह नहीं होना चाहिए।

अर्थात कितने दिनों से साधना करने पर भी मुझे कोई परिणाम नहीं मिल रहा ऐसा सोचकर निराश नहीं होना चाहिए। इतना ही नहीं मैं जो साधना कर रहा हूं वह सही नहीं है क्या! शायद इस साधना से मैं परमात्मा को जान नहीं पाऊँगा! और एक साधना करेंगे ऐसा निराश नहीं होना चाहिए। परमात्मा की कृपा से ही तुम्हारे पास गुरु को भेजा है। मैं इसी मार्ग से तुझे मिलूंगा यह बताने के लिए ही उन्होंने गुरु को भेजा है। इसलिए साधना को करने में कभी निराशा या उदासी नहीं होनी चाहिए।

इसलिए कहते हैं कि जिस विद्या को सीखने के बाद इस धरती पर और कुछ भी सीखने की आवश्यकता नहीं होती वो विद्या तुम्हें केवल सद्गुरु

से ही मिलती है। वो विद्या मिलने के बाद तुम्हारे जीवन में कभी भी असंतुष्ट नहीं रहेगा।''64 कलाएँ सीखने के बाद भी और सीखने के लिए कुछ न कुछ रह जाता है''। लेकिन इस आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या सीखने वाले को कुछ और सीखने की विद्या नहीं रहता। इतना महान है ये आत्म विद्या।

सब लोग इस सृष्टि को देखकर बहुत आनंदित होते हैं। लेकिन यह सृष्टि कैसे आयी? कुछ लोग इस सृष्टि को ही भगवान मानते हैं। लेकिन नहीं। इस सृष्टि को सृष्टि करने वाला सृष्टि कर्ता ही भगवान है यह सद्गुरु के द्वारा जाना है। यह सारा सृष्टि दोनों के मिलाप से होता है वो हैं परा प्रकृति, अपरा प्रकृति ऐसा महात्माओं ने हमें बताया है। यह भगवद्गीता में भी दिया गया है। जब हम परा प्रकृति, अपरा प्रकृति के बारे में जानेंगे तब समझ में आयेगा कि किसका आश्रय लेना चाहिए। और इन दोनों में अंतर क्या है कि?

अपरा प्रकृति अर्थात पंचभूत, सूर्य-चंद्रमा और मन। इन सभी को जो चेतना प्रदान करती है, वही चेतना परा प्रकृति है यानी वही भगवान है, वही परमात्मा है। यदि यह परा प्रकृति में अपरा प्रकृति नहीं मिलाप होगा, तो सब अपरा प्रकृतियां भी जड़ हो जाएँगी यानी उनमें कोई शक्ति नहीं होगी।

सृष्टि में सभी जीवों के शरीरों में भी ये आत्मा यानी चेतना न हो तो वे सभी जड़ ही होंगे। लेकिन, जब तक सद्गुरु नहीं आते तब तक इस विषय को न जानते हुए इन पंचभूतों को, सूर्य-चंद्रमा को ही आराधना करते रहते हैं।

देखिए जब एक घर बनाते हैं तो पहले भूमि पूजा करते हैं। उसी तरह नदी पुष्कर (हर 12 साल के समय में आने वाला कोई एक नदी स्नान)आये हैं वहाँ जाकर नदी स्नान करेंगे तो सारे पाप धुल जाएँगे, पुण्य पाने के लिए जाते हैं। यज्ञ-याग करते समय अग्निहोत्र रखते हैं। इसी प्रकार वायु के बिना जीवित नहीं रह सकते इसलिए वायुदेवता की आराधना करते हैं। रथसप्तमी आने पर सूर्य की पूजा, कार्तिक पूर्णिमा आने पर चंद्रमा की पूजा करते हैं। लेकिन इन सबसे शक्ति मिलता है, थोड़ा पुण्य आता है, बस उतना ही लाभ आता है।

छोटे बच्चे जब खिलौनों से खेलते हैं तो खिलौनों की शादियाँ करते थे, पुरुष खिलौना, स्त्री गुड़िया रखकर उनकी शादी करके, हम खुद ही उनके बड़े–बुजुर्ग बनकर भूमिका निभाते हैं। लेकिन थोड़ा ज्ञान आने के बाद, जब ये दोनों खिलौने हैं यह समझ आने के बाद, तब उन्हें देखना छोड़कर असली शादी देखने के लिए जाते हैं। वैसे ही ये भी।

जिस शक्ति से उन सभी को चेतना मिली, जिस परमात्मा से उन्हें ये शक्ति कहाँ से आई यह नहीं जानते तब तक आराधना करते हैं। लेकिन, गुरु से इन विषयों को जाना है कि परमात्मा ने ही इस संपूर्ण सृष्टि को बनाया है, समस्त जीवों को भी सृष्टि किया है। परमात्मा ने पहले पंचभूतों को, इस प्रकृति को यानी अपरा प्रकृति की भी सृष्टि किया है।

अर्थात इस सृष्टि में सभी जीवों के शरीरों को भी इन पंचभूतों से ही सृष्टि किया है। लेकिन उसमें आत्मा यानी चेतना को प्रवेश कराया, तभी उनमें गति आई। अर्थात ये सारी सृष्टि परा–अपरा प्रकृति के संयोग से ही है। इस अपरा प्रकृति को एक साधन की तरह, एक उपकरण की तरह परमात्मा ने उपयोग किया। वे सृष्टि करते हैं, बाद में खुद में लय भी कर देते हैं। जब यह हम जानते हैं तब क्या हमें अपरा प्रकृति की पूजा करना है ? क्या हमें परा प्रकृति की पूजा करना है ? इसका निर्णय आप खुद लेंगे।

ध्यान में आने से पहले हमें ये सब पता नहीं। लेकिन, जब आप अपने विकास को खुद परीक्षा करेंगे तो आपको पता चल जाएगा। ध्यान के मार्ग में आने के बाद समझ में आता है कि जो दिखाई देता है, जो नहीं दिखाई देता, जो देखा जा सकता है, जो नहीं देखा जा सकता उन सबका कारण परमात्मा है। वही परमात्मा मेरे अंदर आत्मा के जैसे है। उन्हें जानना है तो मैं अंतरमुख होने पर जान सकता हूं यानी ध्यान मार्ग में आने के बाद ही समझ सकते हैं।

इसीलिए जब तक परा प्रकृति का ज्ञान नहीं होता, तब तक अपरा प्रकृति की आराधना करते थे। लेकिन, भगवान को जानने की तीव्र तपन के कारण परमात्मा ही स्वयं गुरु के रूप में आकर हमें इस ध्यान मार्ग को प्रदान

किया, यह बोध भी किया कि ध्यान करने से ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, भगवान की सृष्टि के बारे में, भगवान के बारे में बोध किया गया।

और ''निर्विषय मनः ध्यानं'' कहा गया। लेकिन ये मन सोचता है या किसी और पर चला जाता है। तो श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है कि ? इस अपरा प्रकृति से संबंधित मन जड़ स्वरूप है। मन को शक्ति परा प्रकृति से ही मिला है, यानी भगवान ने कहा कि मुझसे ही आई है। भगवान से शक्ति प्राप्त करने वाला मन ही भगवान तक पहुँचने नहीं देता। लेकिन यह मन भगवान से अधिक शक्तिशाली नहीं है। लेकिन आपको मन तक ही पता है, भगवान के विषय में सही समझ नहीं है, इसलिए सोचते हैं कि मन ही सबसे शक्तिशाली है।

परा प्रकृति अर्थात नाश नहीं होने वाला, सारे सृष्टि को चेतना देता है। इस अपरा प्रकृति को शक्ति देने वाला भी परा प्रकृति ही है। इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा कि मन को भी शक्ति मुझसे आ रहा है। जब हम भगवान को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, तब यही जड़ मन भगवान से ही शक्ति पाता है, वही भगवान तक पहुंचने से हमें रोक रहा है।

अब आप रास्ते में सफर कर रहे हो कोई एक गड्ढा जैसा आ जाए तो आप उसे पार करके आगे बढ़ जाते हैं, लेकिन रुकते नहीं। उसी तरह ध्यान के बीच-बीच में मन विचार कर रहा हो तो उन्हें नजर अंदाज करते हुए अपने आत्मा सफर को आगे बढ़ाना चाहिए। लेकिन विचार आ रहे हैं इसलिए ध्यान रोक देना, या फिर विचार रुकने के लिए म्यूज़िक या बातों पर मन को रखकर घंटों, घंटों बैठे रहना ध्यान नहीं है।

इन पंचभूतों को, सूर्य चंद्रमा को, मन को शक्ति देने वाला परमात्मा ही है। इन दोनों के मिलाप से ही सृष्टि किया गया था। प्रकृति दिखाई देती है, सूर्य दिखता है, चंद्रमा दिखता है, पंचभूतों का अनुभव होता है, मन का अनुभव होता है। हमें जानना चाहिए कि इन सभी को शक्ति किस से आ रही है उस शक्ति को आराधना करने से मैं महान बनूंगा, ज्ञानवान बनूंगा।

इस मार्ग में आने के बाद जो जानना है वो यह है कि सारा ज्ञान एक ही बार में नहीं आता। इसे एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए जानना चाहिए। जैसे सांसारिक विद्या सीखते समय एलिमेंटरी स्कूल से हाई स्कूल, हाई स्कूल से कॉलेज, कॉलेज से यूनिवर्सिटी तक प्रमोशन मिलती है, वैसा ही यह भी।

पहले यह जाना है कि आत्मा ही भगवान है। फिर यह जाना है कि आत्मा कहाँ रहती है ? यानी सभी जीवों में, सारे सृष्टि में व्याप्त है। इसके बाद यह जाना कि उस आत्मा यानी भगवान तक कैसे पहुँच सकते हैं ? तब यह सीखा है कि ''श्वास पर ध्यान'' रखकर अंतर्मुख होने पर ही उसे जान सकते हैं। लेकिन जब अंतर्मुख होते हैं, तब बीच में रोकने वाला क्या है कि ? मन।

अब देखिए जब तमोगुण में, रजोगुण में होते हैं तब मन में ज़्यादा विचार आते रहते हैं। क्यों इस तरह आ रहे हैं ? तमोगुण, रजोगुण की स्थिति में मन बहुत चंचल होता है। यानी बाहरी विषयों में जितना अधिक आसक्ति होता है, ध्यान में मन उतनी ही अधिक परेशान करता है। अगर ध्यान में मन से परेशानी नहीं चाहिए तो बाहरी विषयों में आसक्ति को कम करना है यानी एक विषय को सुनने के समय में, देखने के समय में, बोलने के समय में जो भी हो वहीं के वहीं उसे छोड़ सकें, तो ध्यान में दिक्कत नहीं देगा।

लेकिन क्या कर रहे हैं ? एक विषय को देखा हो, बोला हो, सुना हो उसे बार-बार सभी जानने वालों से कह रहे हैं। यानी जितनी बार उस विषय के बारे में बोलते हैं, हमें उतना मनन हो जाता है। जब हम ध्यान में बैठकर भगवान की ओर ध्यान मोड़ने का प्रयास कर रहे हैं, तब हमें दिक्कत हो जाती है।

इसीलिए श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं। चेतना रहित मन इस परा प्रकृति यानी इस भगवान की शक्ति से ही चेतना पाकर मुझे रोकता है क्या ? इस प्रकार ध्यान के समय तुम स्वयं यह जान सको तो, तुम उसे महत्त्व न देकर अपनी साधना को आगे बढ़ा सकते हो। उस तरह साधक सोच सकेंगे तो भगवान शक्तिशाली है ? या मन शक्तिशाली है ? इस भगवान की वजह से शक्ति पाने वाला मन मुझे दिक्कत देने पर भी मेरे प्रयास में कोई कमी के बिना

मैं साधना करूंगा।

तब साधक मन कितना परेशान करने पर भी अपनी दृष्टि को आगे ही ले जाता है, लेकिन उस परेशानी को देखकर वहीं रुकता नहीं। अब गौर से देखिए हमें परा प्रकृति की आराधना करनी चाहिए? या अपरा प्रकृति की आराधना करनी चाहिए? इस विषय को जानने वाला साधक किसकी आराधना करना चाहिए जान सकता है, ऐसा श्रीकृष्ण भगवान ने गीता में कहा है।

इस तरह से हम बहुत से विषयों को जान रहे हैं। लेकिन अगर हम अब भी पीछे जा रहे हैं, यानी यह हमें समझ लेना चाहिए कि हमें सही समझ नहीं है। इसीलिए ये सब हमें क्यों पता चल रहे हैं? क्योंकि हम भले ही यह जान चुके कि भगवान कौन हैं, लेकिन हमें स्पष्टता नहीं है। उसी स्पष्टता के लिए और अधिक ज्ञान अर्जित कर रहे हैं।

हम सोचते हैं कि हमें ज्ञान आ गया है। आत्मा कौन है, यह पता चल गया है, आत्मा कहाँ रहती है, यह भी जान लिया लेकिन, जब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता, हम को तब तक पूर्ण ज्ञान नहीं आ सकता। जब आत्म दर्शन कर रहे हैं, यानी पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ है। और यह कैसे पता चलेगा कि पूर्ण ज्ञान आया है? सभी से कह रहे हैं कि तुम शरीर नहीं हो, सबको आत्मा के जैसे देख रहे हैं लेकिन जब तक मैं की भावना नहीं मिटेगा तब तक ज्ञान नहीं आयेगा।

ये शत्रु है, वह मित्र है, ऐसा भाव मन में रखा है, तो अभी भी आत्मस्थिति तक नहीं पहुँचे हैं। आत्मस्थिति तक बढ़ने के लिए ऐसे कई विषयों को जानना चाहिए। इसलिए जो जाना वो कम है, जो जानना चाहिए वो बहुत अधिक है।

परा प्रकृति का आश्रय लेने वाला अर्थात भगवान का आश्रय लेने वाला शक्तिशाली होता है। अपरा प्रकृति का आश्रय लेने वाला शक्तिहीन होता है, ऐसा स्पष्टता से कहा गया है। मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान के अलावा दूसरा कोई मार्ग नहीं है, यह भगवद्गीता में भी, उत्तरगीता में भी स्पष्टता से कहने पर भी अपरा प्रकृति को अर्थात देवी-देवताओं को, इन

पंचभूतों को आश्रय लेने के वजह से वो पुण्यकर्म ही होता है, थोड़ा–बहुत फल आता है। लेकिन जन्म–मरण के चक्र में फँसकर, संसार में उलझकर मोक्ष को पाने के लिए संघर्ष करता रहता है। परा प्रकृति का आश्रय लेने वाला अर्थात भगवान को आश्रय लेने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है।

यह सब भगवान की सृष्टि है। वे अपनी प्रकृति को उपकरण के जैसे उपयोग कर रहे हैं। खुद अपने अंदर से उद्भव हुई इस प्रकृति से उन्होंने इस सृष्टि को बनाकर वे अपने इच्छा होने तक चलाते हैं। उनकी इच्छा समाप्त होते ही लीन कर देते हैं। फिर से नई सृष्टि की शुरुआत करते हैं। सृष्टि के लिए परा, अपरा प्रकृतियाँ दोनों होना चाहिए।

लेकिन मनुष्य को विवेक से, विचारना से, विज्ञान से जानना चाहिए कि किसकी आराधना करनी है। इसलिए दो भागों में विभाजित किया गया ज्ञान, अज्ञान। ध्यान में आने से पहले अज्ञान की दशा होती है। यानी वहाँ ऐसा सोचते हैं कि सब कुछ जान लिया है। लेकिन, इस दशा में कुछ भी नहीं पता। ध्यान में आने के बाद ही ज्ञान की दशा होती है।

इसीलिए अज्ञान में रहने वाला स्वीकार नहीं करता। भगवान के बारे में सही समझ नहीं होता, तब तक वह अज्ञान की दशा ही है। भगवान कौन है, तब से ज्ञान आता रहता है, वहाँ से स्पष्टता आता है। हमें अब यह स्पष्टता से पता है कि आत्मा ही भगवान है, लेकिन अभी तक अनुभव नहीं हुआ।

क्यों अनुभव नहीं हुआ? मुक्तोपनिषद् में राम ने जो कहा उसके अनुसार अब भी पुराने संस्कार, पुराने वासनाएँ हमें न छोड़कर परेशान कर रहे हैं। इसीलिए भले ही हमें स्पष्टता से पता होने पर भी, अनुभव होने तक गुरु से दी गई साधना को करते रहना चाहिए। बाहरी विषयों में आसक्ति कम करके, अंतर में सफर अधिक करना चाहिए।

भगवान अर्थात कौन है, हमें स्पष्टता से पता है, इसलिए चाहे हमारे चारों ओर कितने प्रलोभन होने पर भी उन प्रलोभनों में झुके बिना आत्मा के दर्शन का ही प्रयास करना चाहिए। वही समझ होना चाहिए, उसी के लिए ये प्रयास है।

इसीलिए परा, अपरा प्रकृतियों का मिलाप ही यह सृष्टि है।**''अगर अपरा प्रकृति की आराधना करोगे तो जन्म आते हैं, परा प्रकृति की आराधना करने से मोक्ष प्राप्त होता है।''** अपरा प्रकृति का आश्रय लेने से शक्ति खो देते हैं, परा प्रकृति का आश्रय लेने से शक्तिशाली बन जाते हैं।

इस आत्मा के वजह से, इस परमात्मा के वजह से ये सारा सृष्टि चेतना से होती है। वह परमात्मा बाहर जाते ही सभी जड़ हो जाते हैं, इसे बार-बार याद करना चाहिए। तब कितने प्रलोभन होने पर भी आत्मा के दर्शन का ही प्रयास करोगे।

तब परमात्मा पर प्रेम, बाह्य के प्रति उदासीनता होती है। तब किसी को गाली नहीं देते, बस चुपचाप देखते रहते हैं, वह जैसा है, वैसा ही है! जब यह समझ में आता है कि सृष्टि में कुछ भी बुरा नहीं है, तब किसी की आलोचना नहीं करते, साक्षी के जैसे सबको गौर से देखते हुए आप अपना काम करते रहते हैं। आत्मानुभूति के लिए अपनी साधना करते हुए, आप खुद अपनी दृष्टि को खुद पर रखकर आगे बढ़ते हैं।

बुद्धि के लक्षण

आध्यात्मिक जीवन में आने वाले हर एक में बुद्धि ही मुख्य भूमिका निभाती है। इसीलिए राघव राव जी बार-बार कहते हैं कि बुद्धि को विकसित करिये। यानी सभी इंद्रियाँ मन के अधीन होते हैं, तो मन बुद्धि पर निर्भर होता है। यानी बुद्धि जिसे निर्णय करता है, मन उसी के अनुसार काम करता है। इसलिए जिन्होंने बुद्धि को विकसित किया उन्हें ज्ञान भी होता है।

ज्ञान को गुरुओं के द्वारा, सज्जन सांगत्य के द्वारा, स्वाध्याय के द्वारा संग्रहित करती है बुद्धि। ये सारा ज्ञान बुद्धि ही एकत्र करती है, निर्णय लेने वाला भी बुद्धि ही है। इसलिए हमारे जीवन में हमारे निर्णय सही होते हैं, तो समझ सकते हैं कि बुद्धि सही दिशा में है। निर्णय गलत होते हैं, तो बुद्धि भी सही नहीं है। इसी बुद्धि को महात्माओं ने दो तरह में विभजित किया है

1. चंचल बुद्धि
2. निश्चल बुद्धि

1. चंचल बुद्धि :-

इस चंचल बुद्धि को होने वाले कैसे होते हैं ? कौन से काम करते रहते हैं ? किस तरह के इच्छाएं होते हैं ? ये सब जानेंगे।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चंचल बुद्धि होने वाले रजोगुण में होते हैं। रजोगुण में होने वाले अधिक कर्म करते हैं। चाहे पाप हो, पुण्य हो दोनों प्रकार के कर्मों में आसक्ति अधिक होती है। वैसे ही चंचल बुद्धि होने वालों में इंद्रिय निग्रह नहीं होता, विषयों पर आसक्ति अधिक होने के वजह से इनको किसी पर भी स्थिर निर्णय नहीं होता।

इसीलिए हमेशा कर्मों को करते रहते हैं। और ऐसे लोग कोई निर्णय लेकर वो काम करते हैं। लेकिन अगर कोई और एक तरह करता है, तो फिर भी उस को करने का प्रयास करते रहते हैं। यही चंचल बुद्धि का लक्षण है।

ऐसे लोगों में इंद्रिय निग्रह नहीं होता, जो भी सुनते हैं, जो भी देखते हैं, सब कुछ उन्हें चाहिए लगता है। मुझे चाहिए जब यह इच्छा शुरू होती है, तब से ही वे उसे पाने के लिए प्रयास करते हुए, कर्म करते हैं।

इंद्रिय निग्रह होने वाले कम कर्म करते हैं। इंद्रिय निग्रह नहीं होने वाले अधिक कर्म करते हैं। ऐसे लोगों को केवल इस लोक के सुखों पर ही नहीं, स्वर्ग आदि भोगों पर भी अधिक आसक्ति होता है। संसार में देखा जाए तो हर कोई सुख भोगने के लिए दौड़ता रहता है। लेकिन सुख चाहिए तो धन चाहिए, धन चाहिए तो उसके लिए प्रयास करना पड़ता है। जो कुछ है, उसी में संतुष्ट होने वाला अधिक प्रयास करने की जरूरत नहीं होती। लेकिन अधिक आशा होने वाला अधिक कर्मों को करना पड़ता है।

क्योंकि अगर इन्हें गौर से देखा जाए तो इनमें लोक वासना, देह वासना, शास्त्र वासना ये तीनों वासनाएँ बहुत अधिक होते हैं।

1) लोक वासना अर्थात दुनिया में सभी प्रशंसा करें, महान मानें ऐसा सोचना ही लोक वासना है। वे सोचते हैं कि मैं आनंद से रहूँ, खुशी से रहूँ, सुख से रहूँ। इस पृथ्वी पर मिलने वाले सारे आनंद, सुख, भोग भी अस्थायी ही होते हैं! लेकिन यह कितना कहने पर भी इन्हें रजोगुण होने के वजह से समझ में नहीं आता।

2) देह वासना अर्थात देह यानी शरीर को सुंदरता से रखना, देह यानी शरीर को सुख से रखना, देह थानी शरीर को प्रसन्न रखना। ऐसे अनेक इच्छाएँ होने वाला मानव तो उसके लिए प्रयास करना ही पड़ेगा! उसके लिए कर्मों को भी करना ही पड़ेगा! ये इच्छाएँ एक के बाद एक लगातार जन्म लेते रहते हैं। एक बार देह यानी शरीर को सुख देना शुरू करने पर, एक सुख के बाद दूसरा सुख भी चाहिए ऐसा लगने लगता है।

जिसके पास घर नहीं होता, वह सोचता है एक छोटा सा घर हो तो काफी है। छोटे घर से शुरुआत करता है। किसी न किसी तरह घर पूरा करता

है। उससे खत्म हो जाता है क्या? घर में फर्नीचर चाहिए, घर के ज़रूरतों को जुटाते रहता है, बाद में एक कार भी खरीदना चाहता है, इस तरह एक के बाद एक चाहता रहता है। ऐसे कहता है कि इतना सा सुख को भोगेंगे नहीं तो कैसे? इतना सा नहीं जुटायेंगे तो कैसे? यानी एक इच्छा करके दस तरह जुटाने का प्रयास कर रहे हैं, तो सोचिए बुद्धि कितनी चंचलता से है!

3) शास्त्र वासना अर्थात आध्यात्मिकता के बारे में वे जानते ही नहीं। इसीलिए यह पूजा करने से यह लाभ मिलेगा, यह व्रत करने से यह लाभ मिलेगा ऐसे ही सोच कर करते हैं। कर्मों को बढ़ाने वाले कुछ पुस्तक होते हैं, उन पुस्तकों को खूब पढ़ते हैं। मेरे जान-पहचान में कई लोग जो ढेर सारे व्रत करते हैं। पूछो कि ये सब कहाँ से आये रे? वो पुस्तकें आये है ना इस व्रत से इतना पुण्य मिलेगा। उस व्रत से उतना पुण्य मिलेगा सोचकर स्वर्ग के सुखों के लिए ही वे पुस्तको को पढ़ कर वैसे ही करने का प्रयास करते हैं लेकिन मोक्ष के लिए प्रयास नहीं करते।

भगवान को पकड़ते नहीं! सोमवार को शिवजी के मंदिर, मंगलवार को हनुमानजी के मंदिर, बुधवार को संतोषी माता के मंदिर, गुरुवार को साईंबाबा के मंदिर, शुक्रवार को अम्बा माता के मंदिर, शनिवार को वेंकटेश्वर स्वामी के मंदिर, रविवार को सूर्य भगवान के मंदिर जाते हैं। सात दिन सात देवताओं की आराधना करते हुए यह भ्रम में रहते हैं कि हमें बहुत सारा पुण्य मिलेगा।

जब कभी इन्होंने जो सोचा वो पूरी नहीं होता, मैं कई आराधनाएँ कर रहा हूँ, लेकिन मेरे जीवन में कष्ट क्यों नहीं जा रहे हैं, वहीं पर फिर से निराश हो जाते हैं। इतनी तरह के आराधनाएँ कर रहे हैं तो इसका कारण चंचल बुद्धि ही है, वो रजोगुण ही कारण है। ये वासनाएँ कम नहीं होने तक ऐसे ही करते हैं, दौड़ते रहते हैं, बदलते रहते हैं।

इनको धन पर प्रेम, पति-पत्नी पर प्रेम, पुत्रों पर प्रेम, रिश्तेदारों पर

प्रेम। ये सभी बंधन बन जाते हैं। जो कुछ चाहा वो मिलने पर जीवन अमृत के समान होता है। लेकिन जब कष्टों के आने पर दु:ख होता है। वे तब सोचते हैं कि अरे बाबा ये सब मुझे क्यों! इस धन से सुख नहीं मिला, बच्चों से सुख नहीं मिला, शरीर के लिए इतना परिश्रम किया, ये शरीर रोगग्रस्त होने पर घरवाले ही झुंझलाने लगे। मैंने ये सब अनावश्यकता से ही किया।

तब जो बुद्धि पाना चाहता था, अब वह सब अनावश्यक लगता है। यानी ये बुद्धि कितना बदल गया है, देखिए। ऐसे ही मलिन वासनाओं को पकड़ लेते हैं। देह यानी शरीर की वासना, शास्त्रों की वासना, लोक की वासनाओं को मलिन वासनाएँ क्यों कहा गया है ? जो वासनाएँ परमात्मा से दूर ले जाने वाले सब मलिन वासनाएँ हैं। जो वासनाएँ तुम्हें परमात्मा के निकट ले जाने वाले ही शुद्ध वासनाएँ हैं। यह बात मुक्तोपनिषद् में श्रीराम ने हनुमानजी को दिए बोध में है।

मलिन वासनाएँ, शुद्ध वासनाएँ ये दो तरह के वासनाएँ होते हैं। मलिन वासनाएँ संसार की ओर ले जाते हैं, शुद्ध वासनाएँ परमात्मा की ओर ले जाते हैं। और शुद्ध वासनाएँ मोक्ष की ओर ले जाते हैं, मलिन वासनाएँ जन्म-मरण के चक्र में डालते हैं।

इसीलिए, कौन-से भ्रांतियाँ होने पर मलिन वासनाएँ? कौन-से भ्रांतियां होने पर शुद्ध वासनाएँ? यह समझने के लिए पत्री जी ने स्वाध्याय करने का बोध किया है। वे ही नहीं, वशिष्ठ महर्षि ने भी श्रीराम को स्वाध्याय के महत्व के बारे में बहुत अच्छे से बोध किया है।

और इन वासनाओं को छोड़ देना चाहिए। यानी दुनिया क्या सोचेगा ऐसा सोचकर शरीर को सुखी रखने जैसे विचारों को छोड़ना चाहिए। शास्त्रों में इस पूजा को करने से इतना पुण्य मिलेगा, स्वर्ग की प्राप्ति होगी ऐसा कहने पर ये सब कर रहे हैं, लेकिन क्या स्वर्ग ही है क्या ? क्या उसके बाद और कोई लोक नहीं है क्या ? यानी स्वर्ग के ऊपर भी चार लोक और हैं। लेकिन स्वर्ग

में रहने के लिए जो चाहिए उसे सभी कर रहे हैं, किसी ने कहा इसलिए कर रहे हैं।

उसी प्रकार विषयों के प्रति आसक्ति होना चंचलता ही है। यानी मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं ? क्या मेरी प्रशंसा कर रहे हैं ? मैं इतना अच्छा काम कर रहा हूँ, इतनी महानता से कर रहा हूँ, ऐसा सोचते हैं। यहाँ तक कि जब दान-धर्म करते हुए भी वे सब मेरा तारीफ़ कर रहे हैं ? या नहीं ? ऐसी आसक्ति अधिक होती है। इस तरह की आसक्ति होने का कारण भी बुद्धि चंचलता से होना।

''भले ही दूसरे न जानते हों, परन्तु परमात्मा जानता है ना!'' औरों को जानने के लिए क्या है ? परमात्मा को पता हो तो काफी है ना ऐसा सोचना सात्विक गुण का लक्षण है। इसीलिए पूर्व काल में कहते थे कि सभी दानों में गुप्त दान सबसे उत्तम है। तुम को, परमात्मा को पता होना चाहिए, लोगों को पता होने की आवश्यकता नहीं। लेकिन सभी प्रशंसा करना चाहते हो तो चंचल बुद्धि ही है।

प्रशंसा करने वाले जितने लोग होते हैं, गौर से देखेंगे तो आलोचना करने वाले लोग दुगने होते हैं। इसलिए यह सोचना नहीं कि सारा संसार हमेशा प्रशंसा करेगा। बुद्ध जैसे त्याग पुरुष को भी आलोचना किया था, तो क्या हम जैसों की आलोचना नहीं होगी ? आलोचना आ रहा है, तो समझना चाहिए कि उन को ईर्ष्या आई है।

आप भी किसी की आलोचना कर रहे हो तो कहीं न कहीं ईर्ष्या है। इसीलिए पत्री जी कहते थे कि ''NO COMMENT, NO JUDGEMENT''. क्योंकि बिना कारण शुरू करने पर भी आलोचना धीरे-धीरे तूफ़ान की तरह बन जाती है। इसीलिए कहते हैं कि कुछ मत बोलो, अपने कर्मों का फल खुद भुगतता है।

एक बार हम बदलने का प्रयास करते हैं, जब यह पता चलता है कि वह नहीं बदलेगा, तब हमें अपने राय को बदल लेना चाहिए। इसलिए हमेशा

यह देखना चाहिए कि मैं कितना विकसित हुआ हूँ ? मेरी बुद्धि कैसी है ? क्या मैं चंचल बुद्धि में हूँ ? या निश्चल बुद्धि की ओर आ रहा हूँ ना ?

तमोगुण में होते हैं, तो अच्छे कर्म नहीं करते। कर्तव्य कर्मों को भी छोड़ देता है। रजोगुण में होने वाला मिश्रित कर्मों को यानी पाप कर्मों को, पुण्य कर्मो को भी करते हैं।

पापों को, पुण्यों को क्यों कर रहे हैं ? इसका कारण मलिन वासनाएँ ही हैं। यानी धन हो तो सुखी रहेंगे, पद होंगे तो महान नाम आयेगा, मेरे शरीर को सुख दूंगा ऐसे सोचते हुए कुछ कर्म करेंगे तो स्वर्गलोक को प्राप्त करने के लिए कुछ पुण्य कर्मों को करते हैं। ये दोनों भी अशुद्ध वासनाएँ ही हैं। लेकिन परमात्मा के लिए किया गया प्रयास ही शुद्ध वासना है।

ये सभी शास्त्रों के द्वारा ही ज्ञात होते हैं। साधना के मार्ग में आने पर जन्म-मरण के चक्र में गिराने वाले पुस्तकों को नहीं पढ़नी चाहिए। सत्यलोक तक पहुँचने के लिए कैसी साधना करना है ? किस तरह का ज्ञान प्राप्त करना है ? ऐसे आत्मसंबंधी पुस्तकों को अधिक पढ़ना चाहिए।

ऐसे साधना को बढ़ाने वाले पुस्तकों को पढ़ना चाहिए, जो आपको उन्नत स्थिति की ओर ले जायेगा ! राग-द्वेष से दूर रखेगा। इसीलिए महात्माओं ने कहा है कि "इस पिंडांड को जानोगे तो ब्रह्मांड को जान सकते हो"। यानी अपनी आत्मा को जानोगे, तभी परमात्मा को जान सकेंगे। लेकिन चंचल बुद्धि होने वाले को कभी भी मोक्ष की कांक्षा नहीं होती।

कुछ लोगों को ध्यान के बारे में कितना कहने पर भी समझ में नहीं आता। इसका कारण है कि वे अभी उस स्थिति तक नहीं पहुँचे। कहा गया है कि सत्त्वगुण ही सत्य तक पहुँचने का मार्ग है। सत्त्वगुण में रहने वाले को सत्य जानने की इच्छा होती है, मोक्ष प्राप्त करने की कांक्षा होती है। रजोगुण में मोक्ष की कांक्षा नहीं होती।

एक भोगी को मृत्यु से डर होता है, लेकिन एक योगी को मृत्यु एक

खेल के समान होता है। क्योंकि नई साड़ी पहनने में आनंदित होते हैं, वैसे ही नए शरीर को धारण करके और अच्छी साधना करके, अधिक ज्ञान बढ़ाने का आसक्ति योगी को होता है, लेकिन मृत्यु का डर ही नहीं होता।

इस चंचल बुद्धि वाले कभी भी स्थिर होकर एक निर्णय नहीं लेते। जब कभी एक निर्णय लेकर कोई काम शुरू करते हैं, तभी तुरंत सोचते हैं कि अरे! अगर इस तरह शुरू किया, उस तरह से शुरू किया होता तो शायद अच्छा होता। यानी चंचल बुद्धि के कारण थोड़ी देर इस पर, थोड़ी देर उस पर रहता है।

इसीलिए कुछ लोगों को साधना शुरू करके कुछ दिन करके कोई परिणाम नहीं आया, इधर कोई सिर पर हाथ रखते ही ऊर्जा बहुत प्रवाहित होता है या और कोई दूसरा ध्यान करेंगे तो कुंडलिनी शक्ति सहस्त्रार तक तुरंत पहुँच जाता है, उसे प्रयास करने का सोचते हैं। कोई भी जिस काम को पूरा किए बिना छोड़कर दूसरा काम शुरू करता है, अर्थात उनकी बुद्धि निश्चित रूप से चंचल ही है।

तुम ने कोई काम शुरू किया हो, तो उसे पूरा करना चाहिए, देखना होगा कि उसका परिणाम कितना आयेगा। जब तक काम पूरा नहीं होता, तब तक परिणाम कभी नहीं आता। इसलिए तुम "श्वास पर ध्यान" केंद्रित करके प्रयास करते हो, तो उसके परिणाम अद्भुत होते हैं। जब तुम त्रिकरण शुद्धि के साथ विश्वास रखते हो, तब सहयोग मिलता है।

इसीलिए साधना करके अत्युन्नत स्थिति तक पहुँचने वाले भी हैं। पत्री जी ने "श्वास पर ध्यान" रखकर लाखों लोगों को, करोड़ों लोगों को ज्ञान का बोध कर सके तो वही "श्वास पर ध्यान" रखकर आप भी उस स्थिति तक क्यों नहीं पहुँच सकते? इसका कारण चंचल बुद्धि ही है।

अलग-अलग तरह के ध्यान बताने वाले पत्री जी के जैसे प्रसिद्ध हुए हैं क्या? पत्री जी को जितने शिष्य हैं क्या उनके उतने ही शिष्य हैं? और

क्या पत्री जी ने जितना ज्ञान बोध किया उतना ज्ञान बोल सकते हैं क्या? ऐसे एक बार सोच रहे हैं क्या? यानी चंचल बुद्धि होने पर सत्य के बारे में विचार करने की शक्ति भी उनको नहीं होती। सत्य के बारे में सोचने के लिए निश्चल बुद्धि होना चाहिए, सात्विकता में आना चाहिए।

चंचल बुद्धि होने वालों को हमेशा स्थिरता न होने वाला जीवन ही होता है। जो चाहते हैं, वो मिलने पर भी जीवन में संतुष्टि नहीं होती। इसीलिए इंद्रिय-निग्रह न होने वाले को, अहंकार बढने वाले को, लोकोवासना, देहवासना, शास्त्रवासना नहीं छोड़ने वाले का ये सब वैसे ही होते हैं। परिवार, पत्नी, बच्चे जब तक नहीं होते तो लगता है कि वे होते तो अच्छा होता। आने के बाद उनके वजह से जो कष्ट होते हैं, तब अरे पहले का जीवन ही अच्छा था, सोचते हैं कि शादी होने के बाद ही दरिद्रता ने पकड़ लिया।

और इस दरिद्रता के लिए तुम तरसे थे। दरिद्रता की इच्छा करके दरिद्रता को चाह कर फिर दरिद्रता दरिद्रता ऐसा क्यों सोचते हैं? ऐसा सोचने का कारण चंचल बुद्धि ही है। तब वो जीवन पसंद नहीं, अब ये जीवन पसंद नहीं। यानी जब बुद्धि चंचल होने पर उन्हें कोई भी जीवन पसंद नहीं होता। रजोगुण यानी चंचल बुद्धि।

चंचल बुद्धि होने वाला सही निर्णय नहीं ले सकता, सही जीवन जी नहीं सकता, सही सुख पा नहीं सकता, सही संतोष पा नहीं सकता। उसके जीवन में सब कुछ अस्थायी से होते हैं, लेकिन कुछ भी स्थायी नहीं होता। इन को मरते दम तक संसार पर भ्रांति नहीं जाती। इस चंचल बुद्धि से बाहर आना हो तो रजोगुण से सात्विक गुण में आना होगा।

इसलिए कहीं भी स्थिरता रहित निर्णय ले रहे हो, बार-बार सांसारिकता की ओर जा रहे हो, बार-बार शरीर के बारे में सोच रहे हो, बार-बार बंधनों के बारे में सोचते हो तो यह जानना चाहिए कि अभी भी चंचल बुद्धि में ही हो। जैसे झूलते हुए झूले में शिशु को सुलाया नहीं जा सकता,

हिलते पानी में रुपये का सिक्का डालने पर वो स्पष्टता से दिखाई नहीं देता। जब पानी निश्चल से होता है तभी दिखता है।

वैसे ही बुद्धि निश्चल होने पर ही जीवन में सुख, प्रसन्नता का अनुभव कर सकते हैं। इसीलिए चंचल बुद्धि से निश्चल बुद्धि में आना चाहिए। ये चंचलता हमेशा दुख लाता ही रहता है, इसे बदलना है। हर ध्यानी को स्वयं से विचारना चाहिए कि क्या मैं अपने जीवन में सात्विकता में आकर निश्चलता में हूँ या नहीं ?

2. निश्चल बुद्धि :-

आध्यात्मिक जीवन में बुद्धि ही बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बुद्धि को जितना हम विकसित करेंगे, निश्चलता से रखते हैं तो उतना ही ज्ञान बढेगा। सीमित बुद्धि होने पर कुछ विषयों को ही समझ पाते हैं। थोड़ी और विकसित होने पर सांसारिक विषयों को ही समझ पाते हैं। और थोड़ा विकसित होने पर पढ़ाई में या, कलाओं में निपुणता हासिल करते हैं।

आध्यात्मिक जीवन में आने के बाद सांसारिक जीवन से भी अधिक एकाग्रता से होना चाहिए। तब ही बुद्धि में ज्ञान प्रवेश करता है। यदि इतनी एकाग्रता न हो, तो हम इन आध्यात्मिक विषयों को ग्रहण नहीं कर पाते। जब आपका मेधा इन्हें याद नहीं ला सकता, तब आप इन्हें आचरण में नहीं रख पाते, पुराने वासनाओं को नहीं छोड़ पाते, नए संस्कारों को अपने जीवन में नहीं ला पाते।

वर्तमान जीवन का कारण पुराने कर्म, पुरानी वासनाएँ, पुराने संस्कार ही हैं। जो इन्हें नहीं छोड़ते, उन्हें अच्छा क्या है ? बुरा क्या है, यह पता नहीं होने वाले चंचल बुद्धि में ही रहते हैं। लेकिन तमोगुण, रजोगुण को छोड़कर सात्विक गुण में आने पर ही परिवर्तन होते हैं।

तमोगुण में कर्तव्य कर्मों को करने में भी आलसी से रहने वाला कुछ जन्मों के अनुभवों को प्राप्त करने के बाद, रजो गुण में आकर, कर्तव्य

कर्मों के साथ... पाप कर्मों को, पुण्य कर्मों को भी अधिक करता रहता है। फिर कुछ जन्मों में अनुभवों को प्राप्त करने के बाद मैं इस तरह रहने के वजह से मैं इस दु:ख में हूँ यह जानकर सात्विक गुण में आता है। इस तरह हर जन्म में गुण को बदलता रहता है।

किस गलती के कारण, किस गलत विचार के कारण मुझे वर्तमान में ये कर्मफल मिला इस तरह एक पाठ को हर जन्म में सीखना चाहिए। मेरे जीवन में आए दु:खों का कारण भगवान ही है, मेरे माथे पर ऐसे लिख रखा है, ऐसा सोचना अज्ञान है। सात्विक गुण में आने के बाद ये अज्ञान जीवन में बिल्कुल नहीं होना चाहिए।

अब देखिए किसी को संतान नहीं हो तो आसपास वाले पूछते ही रहते हैं कि अब तक बच्चा पैदा नहीं हुआ? यह सवाल ही अज्ञान है। उनका निर्णय ऐसा है, इसीलिए उनके जीवन में यह हो रहा है। ज्ञानी इसीलिए पूछता ही नहीं। अगर पूछ भी ले, तो अरे अभी तक पैदा नहीं हुए! ऐसे दूसरी बात नहीं कहते। यानी सामने वाले को दु:ख नहीं पहुँचाते यानी वे निश्चित रूप से सात्विक गुण में आ चुके हैं।

बहुत से लोग अपने कामों से या अपने व्यवहारों से बगल वालों को दु:ख पहुँचा रहा हूं, वे इतने मूर्ख मन के स्थिति में हैं कि वे यह भी नहीं समझ सकते। ये रजोगुण है। लेकिन सात्विक गुण में आने के बाद सत्य के करीब आने वाला जीव को सबसे पहले इन को छोड़ना चाहिए। और भगवान ने भी पूजा-विधि बताते समय कहा कि अहिंसा प्रथम पुष्प है। यानी कब तुम सात्विक गुण में जा सकते हो? अर्थात जब तुम अहिंसा में जीते हो, तभी भगवान तक पहुँचने की स्थिति आयेगी। उस भगवान की ओर दृष्टि मुड़ता है। जिस क्षण तुम्हारी दृष्टि भगवान की ओर मुड़ता है, उसी क्षण तुम्हें समझना चाहिए कि तुम सात्विक गुण में आ गए हो।

लेकिन सात्विक गुण में होने वाला ऐसे होना चाहिए यानी सृष्टि में

जीते हुए भी उसकी दृष्टि भगवान पर रखना चाहिए। यह हमारे लिए कितना कठिन काम है ? कितनी विचित्र परीक्षा है ! यानी जब एक गुण से दूसरे गुण में बदलते वक्त, भगवान के निकट आते हैं, तब हमें और भी परीक्षाएँ होते हैं। इसलिए कुछ लोग ध्यान में जल्दी से नहीं आते, परीक्षाओं से डरते हैं।

क्योंकि ? ध्यान में आने वालों को देखकर कहते हैं,अरे उन्हें क्या सुख मिला ? उन्हें तो सब कष्ट ही मिले ! लेकिन यह बाहर वाले नहीं समझते कि वे भगवान के कितने निकट हो रहे हैं। लेकिन योगी यह समझ पाता है। मेरे चारों ओर इतनी परीक्षाएँ हैं, यानी भगवान को मैं ही पसंद हूँ। पसंद हूँ, इसलिए उनका दयालु हृदय मुझे और निकट लाने के लिए, इन कर्मों को मिटाने के लिए, मुझे सब कुछ एक साथ देकर मुझे खुद के पास ला रहे हैं, इसे ज्ञानी समझ पाता है।

पत्री जी कहते थे कि तुम्हारे भीतर हमेशा कठिनाइयों को पार करने की शक्ति होने पर तुम्हारे चारों ओर वो समस्याएँ, कठिनाइयाँ आते हैं। तुम्हारे भीतर उन्हें पार करने की क्षमता है, इसलिए वह परमात्मा देता है। चुनौतियाँ समर्थों को ही दिया जाता है। यह हमें तमोगुण में, रजोगुण में हमें समझ में नहीं आते। सात्विक गुण में आने के बाद समझ में आता है। सात्विकता में बुद्धि निश्चल हो जाता है।

बुद्धि सात्विकता में निश्चल क्यों होता है ? क्योंकि भगवान की ओर दृष्टि मुड़ने के वजह से। सात्विक गुण में आने के बाद मलिन वासनाएँ, दुष्ट वासनाएँ चले जाते हैं, तब शुद्ध वासनाओं में रहता है। यानी वे संसार पर आसक्ति घटाकर परमात्मा पर आसक्ति बढ़ाते हैं। जब संसार के प्रति आसक्ति कम हो जाती है, तब उनकी दृष्टि चंचलता से निश्चलता में आती है।

अब देखिए, महाभारत में किसकी बुद्धि चंचल थी ? किसकी निश्चल थी ? यह परखने के लिए द्रोणाचार्य ने एक छोटी सी परीक्षा रखी। निश्चल बुद्धि होने वाले की एकाग्रता अधिक होती है। चंचल बुद्धि होने वाले की

एकाग्रता बहुत कम होती है। इसीलिए उन्होंने अपने सभी शिष्यों से कहा कि पक्षी की आँख पर निशाना लगाना है। फिर द्रोणाचार्य ने पूछा कि तुम्हें क्या दिख रहा है ? तुम्हें क्या दिख रहा है ? तब सभी ने अलग-अलग उत्तर दिए। लेकिन अर्जुन ने कहा कि मुझे केवल पक्षी की आँख ही दिखाई दे रही है।

तब ओह...अर्जुन को धनुर्विद्या में निपुणता मिलेगी। उसकी निश्चल दृष्टि, निश्चल बुद्धि है। इस तरह उन्होंने निर्णय लेकर उस धनुर्विद्या को अधिकतर अर्जुन को ही सिखाते थे। उन दिनों में गुरु जी पहले शिष्यों को किस पर आसक्ति है उसे जान कर उसी में उन्हें पारंगत बनाते थे। अधिक एकाग्रता होने वाले ही युद्धकला में, धनुर्विद्या में उत्कृष्ट बन सकते हैं, इसीलिए यह परीक्षा रखते थे।

आज भले ही धनुर्विद्या की आवश्यकता न हो, लेकिन गुरु द्वारा दिया गया ज्ञान को ग्रहण करने की शक्ति चाहिए। यानी बुद्धि निश्चल होना चाहिए। बाह्य में सब कुछ चंचल ही है, बाह्य दृष्टि होने वाले की बुद्धि चंचल होती है। लेकिन भगवान पर दृष्टि होने वाले को निश्चल बुद्धि होती है। इन्हीं को मोक्ष की कांक्षा अधिक होती है। जो भगवान यानी आत्मा पर दृष्टि रखते हैं, उन्हें उसी प्रयास में आनंद पाते हैं।

अब देखेंगे तो इस ध्यान से, ज्ञान से आनंद नहीं हो तो इसे इतनी महत्व नहीं देते। यानी बाह्य विषयों में होने वाला आनंद से अधिक आनंद देता है, इसीलिए ही आप सब यही प्रयास कर रहे हैं। क्योंकि इस निश्चल बुद्धि को पाने के लिए अर्थात गुरु के बताए विषयों को बहुत एकाग्रता से, गहराई में लेते हो तो आचरण में रखना बहुत आसान है।

जब आप संसार की ओर मुड़कर मलिन वासनाएँ इकट्ठा करने वाले आप परमात्मा की ओर मुड़कर उन्हें छोड़ते-छोड़ते शुद्ध कर्मों को करने लगते हैं, यानी आप आत्म-कर्मों को कर रहे हैं, यज्ञ कर्मों को कर रहे हैं, सत्कर्मों को कर रहे हैं। आप गौर से देंखें, तो पहले स्वार्थ के लिए अनजाने

में पाप कर्म किए होंगे, लेकिन सात्विक गुण में आने के बाद उन पाप कर्मों को छोड़ कर सभी आत्माएँ ही हैं, किसी भी जीव को अन्याय करना, अपने आप को अन्याय करने के समान है, जब यह समझ आ जाती है कि मैं आत्मा हूँ और वो भी आत्मा है, इस सत्य को गुरु जी से जानने के बाद स्वार्थ के लिए जीते नहीं।

तब अशुद्ध वासनाएँ धीरे-धीरे चले जाने लगते हैं। सात्विक में आते ही, साधना में आते ही और भी अधिक वासनाओं को छोड़ देते हैं। तब क्या होता है ? मलिन वासनाएं जाकर शुद्ध संस्कारें, शुद्ध वासनाएँ आते हैं। यानी सबका भला हो ऐसा इच्छा होता है। इसीलिए ध्यान का प्रचार, शाकाहार की रैलियाँ विस्तृत से करते हैं।

किसी जीव को पीड़ा न हो, कोई गलती न करे, कोई हिंसात्मक जीवन न जिएं, इस तरह किये गये कार्यक्रमों को सत्कर्म, यज्ञकर्म होते हैं। और इस तरह अशुद्ध वासनाओं को छोड़कर, शुद्ध कर्मों को, शुद्ध वासनाओं को करते हुए आगे बढ़ते रहते हैं। तब उनके भीतर बहुत आनंद होता है।

आप अपने लिए, अपने बच्चों के लिए, अपने शारीरिक बंधुओं के लिए चाहे कितना कमा कर रख लें, लेकिन किसी क्षण जब दु:ख आने पर अरे! इनके लिए मैंने इतना त्याग किया, ये मुझे ऐसे देख रहे हैं, ऐसी बातें कह रहे हैं, तब किसी एक क्षण दु:खी होते हैं। लेकिन जब ध्यान के मार्ग में आने के बाद गुरु जी से सीखते हैं कि छोटी चींटी से लेकर ब्रह्म तक सभी आत्मस्वरूप ही हैं, तुम्हें अपने से नीचे के जीवों को दंड देने का कोई अधिकार नहीं है, आप जब सबको मांसाहार मत खाइए ऐसे कहने का प्रयास करते हैं, आपके भीतर से आनंद आता है।

जब जीव संसार की ओर से आत्मा की ओर मुड़कर, ध्यान मार्ग में आकर, ऐसे काम करते हैं, तब भीतर से आनंद आता है, यानी इसका तो एक ही संकेत है, भीतर आत्मा आनंद से है। यानी भगवान इस कार्यक्रम में होने

पर आनंद को बाँट रहे हैं।

संसार में आनंद के लिए, सुख-संतोष के लिए खोज रहे हैं । खोजने पर क्षण काल सुख, क्षण काल संतोष, क्षण काल आनंद ही मिला। लेकिन ध्यान में आने के बाद यह स्थायी आनंद की स्थिति मिला। दिन-दिन यह आनंद बढ़ता ही जा रहा है, लेकिन घट नहीं रहा, यानी ये समझना चाहिए कि यह भगवान को प्रिय काम है, इसलिए इतना आनंद है। इसे समझने के लिए निश्चल बुद्धि होना चाहिए।

बाह्य में मुड़ी चंचल बुद्धि को आत्मा की ओर मोड़कर निश्चल बना लिया। और इसे निश्चल बनाने का कारण है कि गुण सात्विक हो गया। अब सात्विकता से शुद्ध सात्विक में जा रहे हैं। सात्विक गुण में भगवान की ओर मुड़ते हैं। शुद्ध सात्विकता में यह बात समझते हैं कि सभी एक ही हैं। सबके भलाई के लिए मैं काम करूंगा, इस तरह हर काई अपने आप निर्णय लेता है, उसी कारण आज कठिनाई होने पर भी पसंद से ध्यान प्रचार कर रहें हैं।

अर्थात ऐसा नहीं कि आपको कोई पुण्य मिलेगा, पुण्य मिल भी सकता है, नहीं भी मिल सकता है, लेकिन मैंने जिनको ध्यान सिखाया, उन में यदि कोई एक भी शाकाहारी बनकर जीवन में मांस खाना छोड़ देगा तो अनेक जीव जीवित रहकर आनंद से रहेंगे इसी एक छोटी-सी इच्छा से ही आज पिरामिड मास्टर इतने जोश के साथ ध्यान प्रचार कर रहे हैं।

इस के अनुसार देख सकते हैं कि पत्रीजी ने जो बीज बोए थे, उनसे कितनी अद्भुत फसल आई है। और इसके पीछे पत्री जी का आशय है कि सत्य। कोई कुछ भी कहे, उसकी परवाह किए बिना उन्होंने सत्य को खुलकर कहा। उन्होंने कभी अपनी शान के लिए, शोहरत के लिए कुछ नहीं कहा, ऐसा भी नहीं सोचा कि लोक उनकी प्रशंसा करें, वे चाहते थे कि लोकेश्वर उनकी प्रशंसा करें इसलिए उन्होंने हमें उनके आशयों के अनुसार तैयार किया।

उन्होंने कहा कि आत्मा ही दैव है। हिंसा छोड़ने पर ही जीव संतोष से रह सकता है। हिंसा से युक्त आहार खाने पर वह चाहे कितना भी ध्यान करने पर भी राक्षस गुण ही होते हैं। लेकिन हिंसा युक्त आहार को छोड़कर शाकाहार खाने से दैव के जैसे बढ़ते हैं ऐसा पत्री जी ने जब उपदेश दिया, तुरंत इसे सत्य मानकर आचरण कर रहे हो, तो इसका अर्थ यही है कि बुद्धि निश्चल हो गई है, तभी इस विषय को ग्रहण करने की शक्ति आपको आई है।

इसीलिए जब तुम्हारी बुद्धि निश्चल होने पर तुम्हें समझ में आता है कि अद्भूतों की सृष्टि करने की शक्ति तुम्हारे भीतर ही है, उस शक्ति को बाहर निकाल सकते हो। लेकिन बुद्धि चंचल होने पर तुम्हारे सामने हीरों का खान पडे रहने पर भी तुम एक हीरा भी नहीं ले सकते। क्योंकि कुछ देर यह अच्छा है क्या ? वह अच्छा है क्या ? इसी प्रकार चंचल बुद्धि से ढूंढते रहते हो। लेकिन जब उस बुद्धि को निश्चल करके तुम तुम्हारे भीतर की ओर यात्रा करोगे तो तुम बहुत ऊँचाई तक बढ़ सकते हो, बहुत कुछ हासिल कर सकते हो।

और इस दिन हम इतना अद्भुत ज्ञान को प्राप्त कर रहे हैं, तो इतने अद्भुत विषयों को जान पा रहे हैं, यानी गुरु से दिया हुआ ध्यान, ज्ञान कितना महान है, यह हम समझ सकते हैं। इसलिए निश्चल बुद्धि होने वाले शिष्य गुरु के प्रति, परमात्मा के प्रति अचंचल भक्ति, अचंचल विश्वास असीमित सम्मान रखते हैं। लेकिन चंचल बुद्धि होने वाले कहते हैं कि पत्री जी ने बताया है, लेकिन हमसे कहाँ हो पाएगा ?

लेकिन पत्रिजी अनेक बार कहते थे, इस पृथ्वी पर मैं आपसे वही काम करने को बता रहा हूँ, जिसे आप कर सकते हैं। लेकिन जब शिष्य शक्तिहीन होता है, तो गुरु से कही बातें ग्रहण करने की शक्ति उसमें नहीं होता है। जब शिष्य शक्तिशाली होता है, तब गुरु चाहे कितना बड़ा काम बताने पर, वह कम से कम उसे करने का प्रयत्न करता है। इसे गुरु कहने पर

भी इसे परमात्मा का संदेश मानता है।

ये सभी अच्छे लक्षण कब आते हैं? जब रजोगुण को छोड़कर सात्विक गुण में आकर सही आहार खाते हुए सही व्यवहार करते रहते हैं, चंचल बुद्धि को छोड़कर निश्चल बुद्धि आने पर, तब सब कुछ समझने की शक्ति आती है। ऐसे लोग बाह्य से कैसे होते हैं? यानी अधिक मौन में रहते हैं, अधिक एकांतवास को पसंद करते हैं।

मौन अर्थात आवश्यकता पड़ने पर भी बोलने के बजाय इशारे करके अपना मुंह बंद रखना नहीं। शिष्यों से बोले गए उनका हर एक शब्द एक संदेश होना चाहिए। पत्री जी कहते हैं कि अनावश्यक शब्द एक भी तुम्हारे मुख से नहीं निकलना चाहिए। आवश्यक बातें बोलते हुए, अनावश्यक बातों को छोड़ देते हैं, तो वही मौन है। मौन यानी तुम्हारे मुख से ऋषियों के जैसी बातें आना चाहिए।

ऋषि कैसे बोलते हैं? आवश्यकता पड़ने पर बोलते हैं, अन्यथा मौन में रहते हैं। सभी को वैसे ही रहना चाहिए। अर्थात तुम्हारी बातें तुम्हें उपयोगी होना चाहिए, अन्यथा तुम्हारे बगल वाले को उपयोगी होना चाहिए। वैसे ही हर बात दूसरों को एक संदेश होना चाहिए। वैसे है निश्चल बुद्धि होने वाले एकांतवासियों के जैसे रहना पसंद करते हैं। लोगों के भीड़ में रहना उन्हें पसंद नहीं होता। क्योंकि? फिर से लोगों के भीड में जाने पर परमात्मा पर दृष्टि रखने वाले फिर बाह्य में जायेंगे तो वे सभी मुझे चिपक जायेंगे इसलिए पसंद नहीं करते।

जैसे कोई घर आकर पैर धोने के बाद फिर से कीचड़ के गड्डे में पैर डालना नहीं चाहता। वैसे ही योगी संसार नामक कीचड़ में जायेंगे तो वो चिपकेगा तो फिर से मुझे ही धोना पड़ेगा। इसलिए वे एकांतवास को पसंद करते हैं। मजबूरी से छोड़ना नहीं। यदि सामने वाला बोलने पर भी तुम उनकी बातें स्वीकार नहीं करोगे तो चाहे तुम 10 लोगों में रहने पर भी, 100 लोगों में रहने पर भी एकांतवासी ही होंगे।

जहाँ भी रहो, तुम जो कुछ भी देखते हो यह सोचना चाहिए कि अरे, यह आत्मा ऐसा शरीर चाहकर लाई है, इससे क्या पाठ सीखेगी! एक महान अधिकारी सामने आया तो उसके आत्मा ने ऐसा जीवन अनुभव करने का निर्णय किया है। अच्छा पढ़ने वाले को देखा तो सोचना चाहिए कि इस आत्मा ने सारा जन्म अच्छी पढ़ाई, अच्छे से पड़ने का निर्णय लिया है।

इतना ही नहीं उस औरत की ड्रेस अच्छी है, उस औरत का हार अच्छा है, उस औरत का हेयर स्टाइल अच्छा है। लेकिन गौर देने की विषय ये नहीं है। किसी को देखकर यह समझना चाहिए कि यह आत्मा इस अनुभव के लिए आया है। एक वैज्ञानिक को ही लो अगर आज सेल फ़ोन नहीं होता तो मानव जीवन की तरक्की नहीं होता। उससे अनेक उपयोग हैं। इतना महान उपकरण की खोज करके दुनिया को दिया, करोड़ों लोगों को उसी के चारों ओर घुमा रहा है, यानी उस आत्मा में कितनी महान मेधा है।

इसीलिए योगी कहते हैं कि किसी को भी आत्मा के जैसे देखो। उसका शरीर दिखाई देता है, शरीर को देखना नहीं चाहिए... वह महान आत्मा है, महान काम कर रहा है। लोक के लिए उपयोगी काम कर रहा है। आँखें बंद करके ध्यान करके तस्वीर को रखना नहीं। आँखें बंद करके ध्यान करने के साथ-साथ आँखें खोलकर लोक कल्याण के काम कर पाने वाला ही महान आत्मा है।

पत्री जी ने भी आँखें बंध करके कोने में नहीं बैठे थे। उन्होंने कहा कि सबको ज्ञान चाहिए, अब इस परिस्थितियों में यही आवश्यक है, इसलिए वे बाहर आए। और राघवराव जी ध्यान में तीन घंटे, चार घंटे बैठते थे। तब पत्री जी ने कहा कि तुम ध्यान में आँखे बंध करने के लिए नहीं आए, बताने के लिए आए हो। तुम्हें ये सब पहले ही हो चुका है। तब से राघवराव जी यही सोचते हैं कि आज क्या बताना है? नया काम क्या करना है?

अर्थात निश्चल बुद्धि होने वाला सौ लोगों में बैठने पर भी उनकी दृष्टि उनसे किये गए पर ही होता है, लेकिन परिणाम पर दृष्टि नहीं होता। वे

सत्कर्मों को, यज्ञकर्मों को करते जाते हैं। परिणाम को परमात्मा पर छोड़ देते हैं। जब शिष्य मार्ग से भटकने लगा तब गुरु जी बताते हैं। लेकिन गुरु जी ने जो कहा उसका आचरण करना है? या नहीं? यह शिष्य के मनोभाव पर, उसके गुणों पर निर्भर होता है। इसीलिए हमें हर समय परखना चाहिए कि हम किस स्थिति में हैं।

यदि परखने के बिना मैंने जो कहा वह सब सही है, यानी फिर से रजोगुण में उतर गए हैं। इसलिए बार-बार परखना चाहिए ङ्क मैं कैसे रह रहा हूँ? क्या बोल रहा हूँ? जो कह रहा हूँ, क्या उसका आचरण भी कर रहा हूँ? या नहीं? ऐसे ही हमेशा यह सब परखते हुए, यदि गलती हुआ तो सुधारते हुए, बगल वालों को मदद करते हुए, लोककल्याणकारी काम करते हुए आगे बढ़ते हो तो समझना चाहिए कि निश्चल बुद्धि में हैं।

लेकिन कभी यह, कभी वह, ऐसे भाग-दौड़ करते हैं तो अभी भी चंचल बुद्धि है। परमात्मा ने तुम्हें एक गुरु को दिया, उस गुरु ने एक साधना बताया है, उस साधना में ही तुम्हें आगे बढ़ना चाहिए। यदि उस साधना को छोड़कर दूसरी ओर चले गए तो यानी उसके वजह से बहुत नुकसान होता है। वे परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन करने वाले कहलाते हैं। जब परमात्मा ने तुम्हें गुरु को दिया है, तो उस गुरु ने जो साधना बताया, वही साधना करते हुए, उनके बताए हुए काम करते हैं तो तुम यज्ञकर्मों करने के समान परिणाम पाते ही रहोगे।

निश्चल बुद्धि वाले ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं, बगल वालों को भी मोक्ष की ओर ले जाते हैं। वे साधना करते हुए ज्ञान को बढ़ाते हुए बगल वालों को बाँटते हैं। ज्ञान को बाँट रहे हो तो यहां अहंकार नहीं होना चाहिए, ऐसा करने का भगवान ने हमें अवसर दिया, इस पर गर्व होना चाहिए। इतना थोड़ा सा पुण्य के लिए ही इतना अवसर दिया है, तो यदि मैं और बड़े कार्य करूँगा तो मुझे और कितना प्राप्त कर पाऊँगा, ऐसी आशा, आशय दोनों होना चाहिए।

तब छोटा कार्यक्रम करने पर भी आनंद पा सकते हैं।

और यदि पत्रीजी की तरह करते हैं, तो और कितना अधिक प्राप्त होगा। जब भी लक्ष्य पर दृष्टि रखते हैं, किए गए काम पर दृष्टि कम रखते हो तब तुम से किया गया काम तुमको महान नहीं लगता। लेकिन लक्ष्य को भूलकर यह सोचते हैं कि मैंने इतना किया, तब अहंकार आता है। यह अहंकार को नहीं आने देना चाहिए, जितना भी आगे बढ़ते हो, उतना ही विनम्र रहना चाहिए। भगवान से दिया गया अवसर है, ऐसा सोचेंगे तो विनम्रता आता है, मैं ही कर रहा हूँ ऐसा सोचेंगे तो अहंकार आता है। लेकिन निश्चल बुद्धि होने वाला हमेशा परमात्मा के, गुरु के प्रति विनम्र रहकर आगे बढ़ने का ही प्रयास करता है।

''मानवों में कितने तरह होते हैं''

मानवों में पाँच तरह वाले होते हैं।

1. खनिज जाति मानव, 2. वृक्ष जाति मानव, 3. पशु जाति मानव, 4. मानव जाति मानव, 5. दिव्य जाति मानव।

1. खनिज जाति मानव :-

इनकी चेतना अत्यल्प होती है। बहुत कम आत्मा की शक्ति होती है। वे लट्टू के जैसे होते हैं। लट्टू अपने चारों ओर ही घूमता है, पर दूर नहीं जाता। यानी वे अत्यल्प आत्मशक्ति होने वाले मानव हैं।

वे अपने शरीर के पोषण को ही देखते हैं। वे सिर्फ अपने स्वार्थ को ही देखते हैं। इन्द्रिय सुखों को, भोगों को ही महत्व देते हैं। अंततः पत्नी, बच्चे भूख से तड़पने पर भी इन्हें परवाह नहीं होती। इनके आसपास वालें मरें या जीएँ, इन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। इनका काम बस खाना-पीना होता है। इन्हें परिवार, जाति, संघ से कोई मतलब नहीं।

पत्थरों में जैसे कुछ मूल्यवान रत्न, हीरे होते हैं, वैसे ही खनिज जाति के मानवों में राजा भी हो सकते हैं, लेकिन उनका व्यवहार ऐसा ही होता है। उदाहरण: नीरो सम्राट ने रोम नगर को जलाकर आनंद से सारंगी बजाया था। वे अति अधम माने जाते हैं।

2. वृक्ष जाति मानव :-

वे कोल्हू में काम करने वाले बैल जैसे होते हैं। बैल लट्टू से ज़्यादा दूर घूमता है। उसका घेरा बड़ा होता है। वे अपने परिवार, जाति तक ही देखते हैं। उनका प्रेम, आदर उन पर होता है। औरों की आच्छाइयाँ- बुराइयां से इन्हें परवाह नहीं होता। वे भी अधम कहलाते हैं। ये दोनों प्रकार लोग तमोगुण प्रधान होते हैं।

3. पशु जाति मानव :-

वे मनो स्थिति में होते हैं। वे अपने धर्म को, क्षेत्र को महत्व देते हैं। उनके लिए ही मेहनत करते हैं, दुखी होते हैं। वे अपने क्षेत्र वाले को ही पसंद करते हैं, औरों को द्वेष करते हैं, घृणा करते हैं, लेकिन मानव को यहीं रुकना नहीं चाहिए। मानव को अपनी सीमा और बढ़ाना चाहिए, प्रकृति नियम के अनुसार रहना चाहिए। प्रगति करना है तो और ऊपर उठना चाहिए। वे मध्यम होते हैं। वे रजोगुण प्रधान होते हैं।

4. मानव जाति मानव :-

वे बुद्धि स्थिति के होते हैं। इनकी सीमा और थोड़ा बड़ा होता है। जैसे चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमता है, वैसे ही उनके परिधि के अनुसार देश को महत्व देते हैं। वे अपने देश वासियों से ही प्रेम करते हैं, वे अन्य धार्मिक देशों को महत्व नहीं देते। उनकी परिधि यहीं रुकना नहीं चाहिए। इन्हें आत्मस्थिति को बढ़ाना चाहिए। वे उत्तम कहलाते हैं। वे सात्विक गुण प्रधान होते हैं। लेकिन इन्हें आध्यात्मिकता के बारे में पता नहीं।

5. दिव्य जाति मानव :-

वे आत्मस्थिति के होते हैं। वे बहुत महान महात्मा होते हैं। उनकी परिधि अनंत होती है। उनकी गति सूर्य के समान होती है, जो सभी में फैलती है। वे केवल मानवों पर ही नहीं, सारे जंतु जाति पर प्रेम, करुणा दिखाते हैं। उनकी निर्गुण स्थिति होती है। वे सबको आत्मस्वरूप मानते हैं, ध्यान करते हैं। इन्हें किसी पर भी अभिमान नहीं होता। कीर्ति-प्रतिष्ठा की आशा नहीं करते। मान-अपमान को समदृष्टि से देखते हैं।

इसलिए हर एक को खनिज स्थिति से दिव्य स्थिति तक आना चाहिए, दैव की तरह बड़ना चाहिए। यही मानव जन्म का लक्ष्य है।

परोक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान में बदलना हो तो ?

ज्ञान दो प्रकार के होते हैं

1. परोक्ष ज्ञान, 2. प्रत्यक्ष ज्ञान।

वैसे ही ज्ञान में आगे न बढ़ पाने के कारणों को भी जानेंगे।

1) परोक्ष ज्ञान :-

महात्मा हो, ऋषि हो, योगी हो, सज्जन हो, सत्पुरुष हो हमें बहुत सारे विषयों को बताया है। वे आज पृथ्वी पर नहीं होने पर भी पुस्तकों के द्वारा उनके संदेशों को हम पढ़ रहे हैं, यानी क्या ? वैसे ही गुरुओं ने जो कहा, उसे सुनते हैं।

आत्मा अर्थात क्या है ? आत्मज्ञान अर्थात क्या है ? सत्य अर्थात क्या है ? असत्य अर्थात क्या है ? ज्ञान अर्थात क्या है ? अज्ञान अर्थात क्या है ? इन सबको हम विस्तार से जान रहे हैं। इस तरह दूसरों से जाना हुआ ज्ञान को परोक्ष ज्ञान कहते हैं।

अर्थात इस परोक्ष ज्ञान से आत्म अर्थात क्या है, जान सकते हैं, आत्मज्ञान अर्थात क्या है, इस विषय को भी जान सकते हैं, परंतु यह अनुभव में नहीं आता। उसे सुना है। उसी तरह मैंने जाना यानी असंपूर्ण ज्ञान ही होता है।

2) प्रत्यक्ष ज्ञान :-

स्वाध्याय के द्वारा, गुरुओं से सुना हुआ ज्ञान को जब अनुभव में ला सकते हो, वही असली ज्ञान है, जिसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। महात्माओं ने भी अनेक कठिनाइयाँ झेलकर इस परोक्ष ज्ञान को अनुभव में ला सके। उनका जीवन उतनी आसानी से नहीं हुआ। क्योंकि उनके जीवन में इस तरह ज्ञान पाने का प्रयास करने पर अनेक कष्ट सहने पड़े। लेकिन कितनी भी कठिनाइयाँ आने पर भी सत्य अनुभव में आना ही चाहिए, इसके लिए उन्होंने बहुत तीव्र

साधना किया। परिणाम को भी पाया।

इसलिए युगों को बीतने पर भी वे लोग इतिहास में स्थायी रूप से रह गए। अर्थात इसके अनुसार परोक्ष ज्ञान को पाना आसान है, लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान को पाना थोड़ा कठिन है। फिर भी प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए ही प्रयास करना चाहिए। जब गुरु कहते हैं कि तुम आत्मा हो, यह सुनकर हम अनुभव का प्रयास नहीं करेंगे तो, तो फिर उसी अनुभव के लिए हमें जन्म लेना पड़ता है।

गुरु हमें जानकारी देते हैं, लेकिन पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का काम हमारे हाथों में होता है। ज्ञान की पराकाष्ठा जानना हो तो प्रत्यक्ष ज्ञान ही है।

''**सुनकर जानना परोक्ष ज्ञान है, और जो सुना उसे अनुभव में लाना ही प्रत्यक्ष ज्ञान है।**'' परोक्ष ज्ञान जानकारी देता है। प्रत्यक्ष ज्ञान अनुभव देकर, दर्शन कराता है।

इसीलिए ज्ञान सुनना पर्याप्त नहीं, उसे अनुभव में लाना ज़रूरी है, ऐसा कोई भी कहते हैं। इसीलिए पत्री जी ने भी कहा ''अनुभव ही ज्ञान है।''

यदि तुम अनुभव में नहीं लाते, तो कितना भी ज्ञान सुनो, वह व्यर्थ हो जाएगा। तुम प्रत्यक्ष ज्ञान को अनुभव में रखते हो, वही प्रत्यक्ष ज्ञान तुम्हें जीवन में और आगे ले जाता है।

इसीलिए कहा गया कि ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, ब्रह्मज्ञान। ये चार स्तर हैं। जब तुम्हें ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है, तो गुरु के द्वारा थोड़ा सा सीखते हो। ''अहं ब्रह्मास्मि, तत्वमसि, सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' जैसे शब्द, उन शब्दों का विवरण सीखोगे तो वो परोक्ष ज्ञान है। जब इसे सही मानकर आचरण में रखते हो, तो विज्ञानवान हो जाते हो। इसे आचरण में रखने पर तुम्हारा अनुभव प्रज्ञान होता है। इस प्रज्ञान के साथ वहीं रुके बिना निरंतर उस सत्य दर्शन के लिए प्रयास करते हुए, उसे सभी को बाँटते हो तो तुम ब्रह्मज्ञानी बन जाते हो, ऐसा कहते रहते हैं।

अब इस पूर्ण ब्रह्मज्ञानी के लक्षण क्या है कि ? किसी में बुराई नहीं

देखता। ब्रह्मज्ञानी को संसार में बुराई जैसे कुछ भी नहीं होता। हर किसी को अच्छे से ही देखता है। इस सृष्टि में हर एक अच्छा ही है। क्योंकि सभी आत्मस्वरूप ही हैं। आत्मा कभी भी बुरी नहीं होती।

मानव को जो मन है उस मन में ही मलिन है। जब वह मलिन को दूर करता है तो वह भी अच्छे के जैसे बदल जाता है। इसीलिए बुद्ध भी कहते हैं कि किसी में बुराई मत देखो, सब अच्छे ही हैं, सभी आत्मस्वरूप ही हैं, इसी भाव में रहो।

ज्ञान में आगे न बढ़ पाने के कारण!

ज्ञान बढ़ना है तो कुछ बुरे लक्षणों को छोड़ना चाहिए। प्रत्यक्ष ज्ञान पाने में रुकावट डालने वाले कारण 1. क्रोध, 2. लोभ, 3. बंधन, 4. अहंकार, 5. स्वार्थ। इस तरह महात्माओं ने कहा था। ये नहीं होने चाहिए।

क्रोध

अगर तुम्हें सामने वाले व्यक्ति पर क्रोध आ रहा है, तो उसके आत्मा पर क्रोध आता है या उसके शरीर पर क्रोध आता है ? यानी सामने वाले व्यक्ति के गुण पसंद न होने पर ही क्रोध आता है।

तुम्हें कितना भी क्रोध आने पर भी, उसके गुण मे बदलाव नहीं आयेगा। उसके गुण को उसे खुद बदलना होगा। आप क्रोधित होना भी व्यर्थ है, उस कोध से तुम्हीं को नुकसान होगा।

इसीलिए कहा गया है कि उसका क्रोध ही उसी का शत्रु है। यानी तुम ब्रह्मज्ञानी हो तो तुम्हें सामने वाला भी आत्मस्वरूप ही लगने पर तब तुम्हें उसके प्रति क्रोध नहीं, बल्कि दया आती है। क्योंकि वह आत्मा होते हुए भी, भगवान होते हुए भी, दैव के जैसे होने वाला अज्ञान में जीव के जैसे रह रहा है, इस तरह उस पर दया आती है।

लोभ

लोभ क्यों नहीं होना चाहिए? क्योंकि जब मैं ऊपर से आया था,

तब कुछ भी साथ नहीं लाया था, जाते समय भी कुछ नहीं ले जाऊँगा, बीच में आने वाले ये सब भी यहीं पर छोड़कर जाना है, इसे जानने वाला एक ब्रह्मज्ञानी कुछ भी आशा नहीं करता। नाम विख्यात के लिए, कीर्ति प्रतिष्ठा के लिए, संपत्ति के लिए कुछ भी आशा नहीं करता। क्योंकि? ये सब जितना अधिक मिलते जाते हैं उतना ही अहंकार भी बढ़ता जाता है। इसलिए उसे ये मिले तो भी ठीक, न मिले तो भी ठीक एक ब्रह्मज्ञानी ऐसी निश्चिंतता के साथ जीवन जीता है। यदि लोभ हो तो हम अभी भी मानव की तरह ही जी रहे हैं, लेकिन दैव के जैसे बढ़ने के लिए, एक ज्ञानी के जैसे बढ़ने का प्रयास नहीं करते। इसीलिए लोभ नहीं होना चाहिए।

बंधन

"बंधन ही भगवान से दूर करते हैं।" जितना अधिक तुम बंधनों में फँसते जाते हो, उतना ही भगवान से दूर होते जाते हो। इसीलिए बंधनों को छोड़ने का साहस होने पर ही तुम भगवान के निकट जा सकते हो। कोई छोटा-सा बंधन भी तुम्हें भगवान से दूर करता है।

यानी परिवार को, बच्चों को छोड़ना पड़ेगा? यानी छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन जब तुम अति-प्रेम दिखाते हुए, इनके बिना मैं जी ही नहीं सकता ऐसे प्रेम में अटक जाते हो। उसी को बंधन कहते हैं। तुम किसी भी परिस्थिति में रहो, जहाँ भी रहो, ज्ञान बढ़ने के साथ समझना यही है कि!

इस जन्म से आए बंधन इसी जन्म तक... वे अगले जन्म तक नहीं आते। हमें इस जन्म में माँ, पिता, पति, पत्नी, सास, ससुर, बच्चे जैसे बंधन आये हैं। लेकिन जाने के बाद, एक-एक कर सब छूट जाने पर ये बंधन अगले जन्म तक बोझ नहीं उठा सकते, बोझ उठाते भी नहीं।

लेकिन पिछले जन्म का ज्ञान इस जन्म में भी उपयोगी होता है। इस जन्म का ज्ञान अगले जन्म में भी उपयोगी होता है। पिछले जन्म में आत्मा थी,

इस जन्म में भी है, अगले जन्म में भी रहेगा। हर ज्ञानी को यह समझना चाहिए कि यदि मैं बंधनों का गुलाम बन गया तो भगवान की कृपा का पात्र कभी नहीं हो सकता। जब यह समझ में आता है, तब परिवार में भी रहता है, पति पत्नी के रिश्ते में भी रहता है, समाज में भी रहता है, लेकिन उनसे बंदी नहीं रहता।

एक आत्मज्ञानी, जो प्रत्यक्ष ज्ञान पाना चाहता है, तो उसके लिए सबसे बड़ा रुकावट बंधन ही है। यह दूर होना चाहिए तो कैसे ? यानी इसके लिए अत्यंत तीव्र साधना के द्वारा दृष्टि भगवान पर टिकना होगा। जब दृष्टि भगवान पर टिक जाती है, तब बंधन आपको छोड़कर चले जाते हैं। तब तुम जो भी काम करते हो, उसमें सहयोगी होते हैं, लेकिन बिगाड़ने वाले कोई नहीं होते।

इसीलिए जो बंधनों का गुलाम बनने वाला अज्ञानी के जैसे रह जाता है। बंधनों का गुलाम बनने के बजाय मुझे अनुभव ज्ञान चाहिए, प्रत्यक्ष ज्ञान चाहिए, ऐसे सोचने वाला आगे बढ़ता है।

अहंकार

मानवों के जैसे जन्म लेते ही तमोगुण, रजोगुण में होने वाले थोड़ा - बहुत नाम विख्यात चाहिए, धन चाहिए लगता है।

वो आने के बाद फिर उनके साथ अहंकार भी आता रहता है। **''अहंकारी को आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता ऐसा उपनिषदों ने भी कहा गया''।** क्योंकि ? अहंकार मन का गुण है। जब मन अहंकार से भरा होता है, तब आत्मा से आने वाले संकेत उन्हें नहीं मिलते।

जब अहंकार दूर होता है, तब आत्मा से आने वाले संकेत हो, वो ज्ञान हो, सब उन्हें मिलते रहते हैं। इसीलिए अहंकार कभी नहीं होना चाहिए।

वैसे ही साधना के समय कुछ अनुभव आते हैं। जैसे होने वाले घटनाओं का पहले से पता लगना, कुछ बातें अचानक स्मरण में आना आदि। वैसे पता होने पर मैं महान ज्ञानी हूं, ऐसा सभी सोचना चाहिए, मुझे जो होने

वाला है, वह मुझे पहले से ही पता चलता है, ऐसा हर एक को बताते हैं।

ये सब सुनने वाले अरे... वे तो महान योगी हैं, योगी जैसे जीवन जीता हैं, ऐसे तारीफ करने लगते हैं। और तब वहीं से अनजाने में तुम्हारे भीतर अहंकार बढ़ता जाता है।

कभी-कभी कुछ लोग कहते हैं। ध्यान में नए-नए आने पर मुझे वो दिखाई देता था, ये दिखाई देते थे, इन दिनों ध्यान करने में थोड़ी श्रद्धा कमी हुई है, इसलिए कुछ दिखाई नहीं दे रहा ऐसा कहते हैं। कैसे दिखेंगे ? कुछ दिखाई नहीं देता, कुछ नहीं लगता, कुछ सुनाई नहीं देता यानी तुम्हारे भीतर अहंकार बढ़ गया है। अहंकार बढ़ने के वजह से ही वो कम हो जाते हैं। जिस क्षण मन में अहंकार को जगह देते हो, उसी क्षण आत्मा से मिलने वाले सारे संकेत भी बंद हो जाते हैं, इसे याद रखिये।

हर कोई, हर पल यह परखना चाहिए कि क्या मुझमें अहंकार है ? या नहीं ? नाम विख्यात भी गिराने के लिए ही आते हैं। चाहे जो भी बढ़े, मुझे मेरे जैसा ही रहना होगा, मुझे आत्मदर्शन चाहिए, प्रत्यक्ष अनुभव चाहिए। कितनी भी सिद्धियाँ आ जाएँ... कहीं भी अहंकार को नहीं बढ़ाना चाहिए।

जब तुम उन सिद्धियों का प्रदर्शन करते हो, तब तुम्हारी प्रगति रुककर शुरुआत की स्थिति पर आ जाते हो। लेकिन यदि वही सिद्धियों को लोककल्याण के लिए उपयोग में लायेंगे, तो हनुमानजी की तरह वहाँ आत्मदर्शन होता है।

सिद्धियाँ आने पर अहंकार बढ़ाते हो, तो पतन होता है। लेकिन जब अहंकार न बढ़ाकर उन्हीं सिद्धियों का उपयोग लोककल्याण के लिए करते हो, तब आत्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी के जैसेआगे बढ़ते रहते हो।

स्वार्थ

आध्यात्मिक मार्ग में याद रखने वाला एक और अत्यंत महत्वपूर्ण विषय क्या है कि स्वार्थ रहित जीवन जीना।स्वार्थ के बिना जीवन जीना।

''मेरे वाले, मेरे मित्र, मेरे बच्चे, मेरी पत्नी, मेरा पति'' यही सबसे बड़ा स्वार्थ है।

उदाहरण:- आप चारों के साथ कहीं जाने पर तब कोई बगल वाला कहता है कि आइए मैडम, भोजन करेंगे तो आप कहते हैं रुकिए, रुकिए मेरे साथ आने वाले और वहीं हैं, मैं उन्हीं के साथ मिलकर खाऊँगी। यानी जो इतने अपनापन से, प्रेम से आपको बुलाने वाले वे क्या आपके रिश्तेदार नहीं? यानी जो आपके साथ आए हैं, उन्हीं के बारे में सोचकर इधर बुलाने वालों को निरुत्साहित कर रहे हो, यही तो एक छोटा सा गलत है, जिसे आप जानते नहीं।

लेकिन सच में तुम जो काम करने पर भी तुमको सराहने वाले ही आपके सच्चे मित्र हैं। तुम ने इनके साथ भोजन किया तो उन्हें क्रोध आ जाए तो वे कैसे मित्र हुए! छोटे-छोटे गलतियां साधारण से हमें स्वाभाविक जैसे लगते हैं। सभी आत्म बंधु ही हैं, सभी आत्मस्वरूप ही हैं, यह जानने के बाद भी कुछ लोगों पर अधिक प्रेम दिखाते हैं, कुछ लोगों पर कम प्रेम दिखाते हैं।

और यह किस हद तक सही है, खुद अपने आप ही विचारण करके जानने का विषय है। यह भूल सिर के बाल के जैसी छोटी है, लेकिन इस छोटी गलती को भी भगवान क्षमा नहीं करेंगे यह स्मरण में होना चाहिए।

सभी आत्मस्वरूप हैं, इस पाठ को रटने से कुछ नहीं होगा, व्यवहार ऐसा होना चाहिए। तुम कितनी भी क्लासेस में बताने पर भी, कितने भी नोट्स लिखने पर भी, कितनी भी क्लासेस में हाजिर होने पर भी यदि तुम्हारा व्यवहार नहीं बदलोगे तो तुमको प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होगा।

स्वार्थरहित जीवन ही भगवान देखते हैं। यदि मन में स्वार्थ से भरे मन में मैल रहेगा तो बगल में रहने वाले परमात्मा को सब कुछ मालूम होता है। तुम्हारे बगल में बैठे व्यक्ति तुम्हारे मन को नहीं जान सकता, लेकिन तुम में तुम्हारे हृदय में स्थित भगवान को तुम्हारे विचार भी मालूम है, तुम्हारा स्वार्थ

भी मालूम है, तुम्हारा प्रेम भी मालूम है।

इसलिए तुम्हारे सोच, बात, व्यवहार एक होने चाहिए। आत्म बंधुओं कहकर बुलाना ही नहीं, वैसे ही अनुभवपूर्वक व्यवहार भी करना चाहिए।

ज्ञान में उन्नति प्रत्यक्ष ज्ञान पाना हो तो क्या करना चाहिए ?

1) विनम्र होना चाहिए :

जितना अधिक विनम्र रहेंगे, उतना ही हम आगे बढ़ेंगे। आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान यदि अनुभव में आए है यानी विनम्रता ही पहली सीढ़ी है। हम जितने विनम्र होंगे, प्रकृति, परमात्मा, गुरु उतनी ही अद्भुत ढ़ग से हमें गढ़ते सुधारते हैं।

गुरु ज्ञान देता है। लेकिन वहाँ विनम्रता हो तो गुरु सोचता है यह शिष्य उन्नति के योग्य है। जब हम सबको आत्मस्वरूप मानकर देखते हैं, तब प्रकृति सोचती है कि यह कितना विनम्र है। परमात्मा सोचता है कि विनम्र होने वाले को यदि ज्ञान दिया जाए तो यह दैव के जैसे बढ़कर लोक कल्याणकारी काम करेगा।

गुरु, प्रकृति, परमात्मा हमें निरंतर देखते रहते हैं। गुरु तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है, प्रकृति, परमात्मा दिखाई नहीं देते। फिर भी वे गुरु से भी अधिक हमारी देखरेख करते हैं। इसलिए हमें जानना चाहिए कि तुम्हारे उन्नति का पहला सीढ़ी विनम्रता है।

2) सामूहिक ध्यान, सज्जनों की संगति करनी चाहिए :

बहुत लोग कहते हैं कि हमेशा भीमवरम क्यों जाते हो? यहाँ बैठकर भी तो ध्यान किया जा सकता है! ऐसे आलोचना करते हैं। क्योंकि सज्जनों की संगति से प्रत्यक्ष ज्ञान जल्दी प्राप्त होता है।

हम गुरु से सुनने पर भी सज्जन संगति में शामिल होने से, सामूहिक ध्यान में शामिल होने से, तभी बहुत उन्नति होती है।

इसलिए अष्टावक्र ने कहा कि तीनों लोकों में सबसे बड़ा पुण्यकर्म

क्या है ? अर्थात सज्जनों के संगति में शामिल होना। तुम्हें प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना है तो तुम्हें सज्जन संगति में भाग लेना चाहिए। और असली सज्जन संगति कहाँ मिलती है ? यानी वो भीमवरम में ही होता है।

क्योंकि भीमवरम आने वालों में कोई भी स्वास्थ्य अच्छा होने के लिए, संकल्प पूरे होने के लिए, कर्मों को दग्ध करने के लिए, ऐसे विचारों से नहीं आते।

सभी आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए, आत्मा के दर्शन करने के लिए ऐसे विचारों से आने वाले सज्जनों की संगति में भाग लेने वालों को प्रत्यक्ष ज्ञान शीघ्र ही मिलता है। कब ? कैसा व्यवहार करना चाहिए ? यह सज्जन संगति के द्वारा हर क्षण जानना चाहिए।

कई लोग सोचते हैं कि मैं भीमवरम नहीं जा पा रहा हूँ तो क्या हुआ, लाइव तो आ रहा है ना, मैं देख रहा हूँ ना ! लेकिन अवसर न होने वालों के लिए लाइव। क्लास तो सुन सकते हैं, लेकिन वो सामूहिक ध्यान तुम्हें भीमवरम में ही मिलेगा। असली सज्जन संगति आपको वहीं पर प्राप्त होगी।

बाहर होने वाले सज्जन संगति इच्छाओं से भरे रहते हैं। लेकिन भीमवरम में होने वाली सज्जन संगति से आत्मा के प्रति प्रेम बढ़ता है, . आत्मशक्ति बढ़ाने की इच्छा बढ़ती है, आत्मा की ओर दृष्टि मुड़ता है।

परोक्ष ज्ञान में होने वाले आप प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त करने के लिए आपको हम बार-बार भीमवरम आने के लिए कह रहे हैं। एक योगी के लिए, एक साधक के लिए, एक ज्ञानी के लिए सबसे अधिक लाभ देने वाला सज्जन संगति ही है। सत्पुरुष कहते हैं, लेकिन आचरण में रखने वाला तो ज्ञानी ही है।

अर्थात यहाँ आत्मा ही भगवान है, इस सत्य को इतने लोग विश्वास कर रहे हैं, यह तुम को वहाँ जाकर देखोगे तो प्रत्यक्ष से जानोगे। वे सभी इच्छाओं के बिना आए हैं। वे सभी कोई संकल्प नहीं रखते, बीमारी के लिए

नहीं आए।

इतने लोग केवल आत्मा को जानना चाहते हैं, आत्मज्ञान को पाने के लिए ही हैं, यानी मानव के लिए यही सही है, यही धर्म है, ऐसा यहाँ आकर इसे जान लेते हैं।

इसीलिए साधकों के लिए विनम्रता पहली सीढ़ी है, तो सज्जनों की संगति में, सामूहिक ध्यान में भाग लेना दूसरी सीढ़ी है। सुना हुआ ज्ञान जल्दी अनुभव में आना हो तो, प्रत्यक्ष ज्ञान पाना हो तो! आशा के वश नहीं होना चाहिए, बंधनों को छोड़ने का साहस होना चाहिए, क्रोध को आवश्यक होने पर ही प्रदर्शन करना चाहिए, अहंकार नहीं होना चाहिए, स्वार्थ रहित से जीना चाहिए।

वैसे ही आत्मज्ञानी को क्षुद्रविद्याओं से दूर रहना चाहिए। उन्हें सिखाने वाले गुरु पृथ्वी पर बहुत कम हैं, लेकिन उसके प्रति थोडा से थोडा आशा हो तो फिर से नीचे गिर जाते हैं। सिद्धियाँ आने पर भी अहंकार नहीं बढ़ाते हुए, जब आवश्यकता होने पर लोककल्याण के लिए उनका उपयोग करेंगे तो तभी आत्मज्ञान आता है। स्वार्थ के लिए उपयोग करने पर फिर से नीचे गिर जाओगे।

इन सबको जानते हुए परोक्ष ज्ञान को प्राप्त करने वाले हम लोगों को प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने के लिए अवश्य ही प्रयास करना चाहिए। ज्ञान की पराकाष्ठा, उसकी अंतिम स्थिति क्या है यानी प्रत्यक्ष ज्ञान ही है। यह जानतेहैं की आत्मा है, यह भी जानते हैं कि इस शरीर में है, लेकिन अनुभव में अभी तक नहीं आया। उस अनुभव को पाना ही प्रत्यक्ष ज्ञान है।

Programs by the Tatavarthy's that will be broadcasted on YouTube:

a) Channel name: **Tatavarthy Veera Raghava Rao**

This channel has 2,000+ videos featuring messages from Mr and Mrs Tatavarthy.

b) PMC has also launched a YouTube channel for Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.

Channel name: **Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.**

c) For messages from trainees who have trained under Mr. and Mrs. Tatavarthy, watch the Tatavarthy Spiritual Trainees YouTube channel.

d) You can also go directly to the YouTube app, type Tatavarthy Veera Raghava Rao in the search bar, and watch all the Mr. and Mrs.Tatavarthy videos.

To watch Tatavarthy's zoom sessions:

a) Silence meditation from **4 a.m.** to **6.30 a.m.**, followed by messages related to soul-knowledge from **6.30am** to **7.30am.**

Zoom ID: **2413823868** Password: **RAO**

b) The above-mentioned Zoom session will also be livestreamed on **YouTube** from **6.30am to 7.30am.**

c) Those who are in the TVR & TRL WhatsApp group will receive Zoom and YouTube links, along with details about the Tatavarthy's classes. They must save Sindhura's phone number: **8555995217**

d) Those who wish to join the Tatavarthy's WhatsApp group can contact Sindhura: 8555995217, Madhu: 7893917364 or visit www.tst.org.in and click on the "Join WhatsApp Group" link.

Information available on Tatavarthy's website:

Website address: www.tst.org.in

a) Details of programs conducted under the guidance of Mr. and Mrs. Tatavarthy and Google Maps location are available.

b) All books by Mr. and Mrs. Tatavarthy are available in PDF format for free download in Telugu, Kannada, Hindi, and English languages.

c) All the messages of Mr. and Mrs. Tatvarthy are organized in concept-wise YouTube playlists.

d) Summaries of Mr. and Mrs. Tatavarthy's messages are provided in the form of quotations.

e) The gallery of Mr. and Mrs. Tatavarthy is also available.

For registration of a 3 day free meditation and soul-knowledge training classes held in Bhimavaram on the 1st, 2nd, and 3rd of every month, contact Sindhura, 8555995217.

Programs by the Tatavarthy's that will be broadcasted on YouTube:

a) Channel name: **Tatavarthy Veera Raghava Rao**

This channel has 2,000+ videos featuring messages from Mr and Mrs Tatavarthy.

b) PMC has also launched a YouTube channel for Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.

Channel name: **Brahmarshi Tatavarthy Veera Raghava Rao.**

c) For messages from trainees who have trained under Mr. and Mrs. Tatavarthy, watch the Tatavarthy Spiritual Trainees YouTube channel.

d) You can also go directly to the YouTube app, type Tatavarthy Veera Raghava Rao in the search bar, and watch all the Mr. and Mrs.Tatavarthy videos.

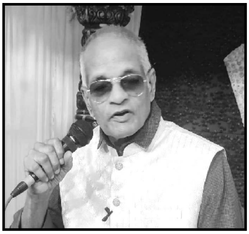

Tatavarthy Raghavarao Sir Books in English

1.	Life Science (Part-I)	Rs.120
2.	Why is Guiding Not Meditation ?	Rs.100
3.	Which is the right Meditation ?	Rs.100
4.	Die before death!	Rs.120
5.	The Law of Karma	Rs.100
6.	What is Meditation?	Rs.80
7.	True Path	Rs.80
8.	Why soul-knowledge	Rs.70
9.	What comes after death ?	Rs.70
10.	How to improve Financial Status ?	Rs.60
11.	Wisdom is attained only through Meditation	Rs.60
12.	What is Intention?	Rs.50
13.	Why is this life?	Rs.50
14.	Vegetarian Food Is Human Food	Rs.50
15.	Meditation for the Development of Students	Rs.40
16.	Non violence and vegetarianism	Rs.40

श्री तटवर्ती वीर राघवराव के हिन्दी किताब

1. आत्म शास्त्र ।.. Rs.200/-
2. ध्यान विद्या ।.. Rs.160/-
3. भगवद् गीता का सार ।... Rs.160/-
4. सत्य मार्ग ।... Rs.160/-
5. मरने से पहले मरना है। Rs.130/-
6. गाईडिंग ध्यान क्यों नहीं ?...................................... Rs.120/-
7. भगवान कौन है।... Rs.120/-
8. कर्म सिद्धांत ।... Rs.120/-
9. विज्ञान का अर्थ - निहितार्थ । Rs.120/-
10. ब्रह्म ज्ञान ।... Rs.100/-
11. यह जीवन क्यों है ? Rs.100/-
12. मेहर बाबा का संदेश ।... Rs.100/-
13. कौन सा ध्यान सही है ?.. Rs.100/-
14. मरने के बाद, साथ में आने वाले विषयों ।.................Rs.80/-
15. भगवत के दृश्यों का अर्थ ।..Rs.80/-
16. आत्म हंतक कौन होता है ।.......................................Rs.70/-
17. स्त्री जन्मों में सीखने वाले विषयों, पुरुष जन्मों में सीखने वाले विषयों।. Rs.70/-
18. दुख निवारण का मार्ग...Rs.75/-
19. उत्तम पुरूष..Rs.60/-
20. आर्थिक स्थिति बढाना है तो ? Rs.60/-
21. निर्वाण मार्ग...Rs.60/-
22. सत्य...Rs.50/-
23. क्या हम इस लोक के वासी हैं या परलोक के वासी हैं ? Rs.50/-
24. गुरू को पहचानना कैसे ?..Rs.50/-
25. विद्यार्थियों के विकास के लिए ध्यान विद्या Rs.50/-
26. शाकाहार ही मानव का आहार है! Rs.50/-
27. ब्रह्मं क्या है ? Rs.50/-
28. संकल्प अर्थात ? Rs.40/-

For Books Contact : TATAVARTHY VEERA RAGHAVARAO
BHIMAVARAM-534201. CELL: 9490171853, 9440309812

- आत्मदृष्टि होने वाले सबमें आत्मा का ही दर्शन करते हैं, उन्हें सभी आत्मस्वरूप के जैसे दिखाई देते हैं।''
- ''भगवान बाह्य प्रिय नहीं, भाव प्रिय हैं।''
- ''सृष्टि में मानव ही नहीं, सभी चराचर जीव भी आत्मस्वरूप ही हैं।''
- ''सभी जीवों की सेवा करा ही सर्वेश्वर की सेवा है।''
- ''धर्म की रक्षा करोगे! तो वही धर्म दैव बनकर तुम्हारी रक्षा करेगा।''
- ''सत्य के लिए प्रयास करने वालों को हानि पहुँचाना ही धर्मविरुद्ध व्यवहार करना।''
- ''धर्म का आचरण करने वाले बहुत शीघ्र सत्य के निकट पहुँच जाते हैं।''
- ''सत्य को आश्रय लेने वालों का जीवन वैभवशाली होता है।''
- ''भगवान के दर्शन के लिए योग मार्ग ही सही मार्ग है।''
- ''जीवों को हिंसा करना ही भगवान को हिंसा करने के समान है।''
- ''आत्मस्थिति में रहने वाला किसी से नहीं डरता, प्रलोभनों में नहीं झुकता।''
- ''समाधि स्थिति यानी अंतरंग में उत्तर मिलने की स्थिति।''
- ''वशिष्ठ जी ने कहा कि विचारना ही परम ज्ञान है''।
- ''सात्विक श्रद्धा उच्च स्थिति तक ले जाकर सत्य तक पहुँचाती है।''
- ''जितने विनम्र होंगे, उतना ही ध्यान में बढ़ते रहोगे।''
- ''विनम्रता ऊर्ध्व लोकों को, अहंकार अधोलोकों को ले जाती है।''
- ''सेवा से, प्रेम से, त्याग से दूर होंगे तो अहंकार बढ़ता जाएगा।''
- ''करोड़ों जन्म उठाने पर भी सद्गुरु नहीं मिले तो तुम्हारे शरीर के भीतर होने वाले परमात्मा को नहीं जान सकते, मोक्ष को नहीं प्रास कर सकते।''
- ''64 कलाएँ सीखने पर भी और सीखने के लिए शेष रहेंगे।''
- ''अगर अपरा प्रकृति की आराधना करोगे तो जन्म आते हैं, परा प्रकृति की आराधना करने से मोक्ष प्राप्त होता है।''
- ''बंधन ही भगवान से दूर करते हैं।''
- ''अहंकारी को आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता।''

इसी प्रकार ज्ञान से भरी संदेशों से संहति है ये ''साधना में स्थितियाँ'' नामक पुस्तक। पाठकों को इसे धीरे से पढ़कर, समझ कर, आचरण में लाकर, स्वयं का उद्धार करोगे यही आशा से...

– ब्रह्मविद्वरिष्ठ तटवर्ति राज्यलक्ष्मी

Rs.**80/-**